वैदिक धर्म

[अक्टूबर १९५५]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

वर्ष ३६ अंक

वैदिक धर्म

क्रमांक ८२

भाद्रपद, विक्रम संवत् २०१२, अक्टूबर १९५५



शुद्ध बुद्धिवानकी महिमा

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥

ऋ० ७।१३।१

(विश्व-शुचे धियं-धे) सब प्रकारसे शुद्ध और पवित्र बुद्धिका धारण करनेवाले (असुर-घ्ने अग्नये) दुष्टोंका विनाश करनेवाले तेजस्वी अग्रणीके लिये (मन्म धीतिं भरध्वं) मननीय प्रशंसाके स्तोत्र गाओ। (मतीनां यतये) बुद्धियोंका संयम करनेवाले (वैश्वानराय) सबके नेताके लिये (बर्हिषि हविः न) यज्ञमें हवन करनेके समान (प्रीणानः) सन्तुष्ट हुआ मैं (भरे) अन्नका अर्पण करता हूं ॥

शुद्ध पवित्र दुष्ट विनाशक नेताकी प्रशंसा करो। जो अपने मन और बुद्धिका संयम करता है उसके लिये अन्नका समर्पण करो।

वेद-मन्दिर-वृत्त

१ योगमहाविद्यालयका आसन, प्राणायाम, सूर्य-नमस्कार आदि सिखानेका कार्य अच्छी तरहसे चल रहा है।

२ वेदमहाविद्यालय- इसमें वेदादि आर्षग्रंथोंका अध्ययन अध्यापन होता है। प्रो० मंगलानी एम् ए गत ५ महिनोंसे वेद उपनिषद् गीताका सूक्ष्मदृष्टिसे अध्ययन कर रहे हैं। दूसरे देहलीके श्री. वेदप्रकाशजी बी ए. गत दो महिनेसे दाखल हुए थे। इन्होंने जैसा वेदाध्ययनमें अपना चित्त लगाया था, वैसा ही योगसाधन आसन प्राणायाम ध्यान धारणामें भी अच्छी उन्नति की थी। और प्रतिदिन एक चित्तसे ये अध्ययनमें रत थे। इनकी इच्छा थी कि संपूर्ण वेदोंका अध्ययन करें और पश्चात् वेदधर्मके प्रचारमें अपना जीवन लगावें।

परसोंके सप्ताहमें उनके श्वशुर और भाई यहां आये और उनको अपनी नोकरी करनेके लिये बाधित करने लगे। दो तीन दिन उनका संघर्ष हमने देखा और हमने विचार किया कि ऐसे विरोधमें पांच वर्षोंका कोर्स पूर्ण होना कठिन है। इसलिये हमने उनको वापस जानेके लिये आज्ञा दी। और एक अच्छे वेदाध्ययनके प्रेमी यहांसे दूर हुए।

उनकी वेद सीखनेकी इच्छा है, इसलिये हमने उनको अपने घरमें नोकरी करके बचे शेष समयमें वेदाध्ययन करें ऐसी आज्ञा दी है। प्रति छ. मासके पश्चात् एक मास आकर वे यहां रहें और वेदचर्चा करें और इस तरह अपना वेदाध्ययन करते जांय। इस तरह हो सका तो अनेक वेदके प्रेमी वेदाध्ययन कर सकेंगे। हम भी विचार कर रहे हैं कि इस दिशासे हमारा प्रकाशन कैसे उपयोगी हो सकता है। इस विषयमें विचार निश्चित हो जानेपर हम उसको प्रकाशित करेंगे।

गायत्री जपानुष्ठान

गतमासके पश्चात् गायत्री जपका अनुष्ठान नीचे लिखे अनुसार हुआ है—

१ रामेश्वर- श्री रा ह. रानडे	१३८०००
२ पारडी- स्वाध्यायमण्डल	५१००
३ बडौदा- श्री बा. का विद्वांस	२२५०००
४ मालाड- श्री विष्णुज्योति जोशी	८९७०१६
५ वाशीम- श्री भा श्री गुडागुळे	७०८००
६ उमरी- श्री मोहिनीराज रा चांदेकर	४८०००
७ नासिक- श्री द. मो पेठे	२७१२०
,, श्री नन्दलाल अ पाठक	१२५०००
८ नाथद्वारा- श्री विजयानन्दजी	१२५०००
	१६,६१०३६
पूर्व प्रकाशित जपसंख्या	२५९९१०४
कुल जपसंख्या	४२१०१४०

मन्त्री
जपानुष्ठान समिति

पशु-पक्षियोंका परस्पर सहयोग

+ जंगली पशुओंके विशेषज्ञ हिकबर्ट सीगलरको एक बार हरे घने जंगलमें चमकीले नीले रंगकी झलक दिखाई दी। इसके पश्चात् एक दूसरा भीखासा चब्बा हिला और सीगलरने देखा कि वह चुपचाप उड़कर उसी शाखापर आ बैठा जहां पहला नीला पक्षी बैठा था। आगन्तुक पक्षीके मुखमें कुछ खाद्य पदार्थ था। वह फुदककर पहले पक्षीके और अधिक सन्निकट हो गया। पहले पक्षीने उत्सुकतासे उसकी ओर सिर उठाकर देखा और अपना मुंह आगन्तुककी भेंटको स्वीकार करनेके लिए श्रद्धाके साथ खोल दिया।

सीगलरको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पंख निकलनेकी ऋतुमें पक्षी अपने बच्चोंको लाड करते हैं और यह लाड पंख निकलनेके अनन्तर भी प्रायः रहता है। प्रेमालापके मौसममें भी नर पक्षी उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ देकर मादा पक्षीको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। परंतु यह न तो पंख निकलनेका समय था और न ही प्रेमालापका इस समय तो कठोरतम सर्दी थी।

जंगली पशुओंके विशेषज्ञने शीघ्रतासे अपना टैलर-कोप दूरबीन विशेष उठाया और परिस्थितिको समझ लिया। भेंटको ग्रहण करनेवाला एक पुराने भूरे रंगका युवा पक्षी था। इसकी निचली चोंचका पिछला हिस्सा टूटा हुआ था और वह किसी भी प्रकारसे भोजन उठानेमें असमर्थ था।

निकट पारिवारिक सदस्यों द्वारा परस्पर सहयोगकी यह अन्तःप्रेरणा जंगली पशुओंमें प्रायः पाई जाती है। परन्तु यहां उपरोक्त घटनामें मानवी भाई चारेके अति सन्निकटकी चीज प्रतीत होती है।

प्राकृतिक प्राणियोंमें प्रतिस्पर्धा और निजाभिव्यक्तिकी अन्तःप्रेरणा विद्यमान होती है। परन्तु सारे जीवनभर इस प्रकारकी नैसर्गिक बुद्धि अन्य प्रकारके प्रयत्नसे सन्तुलित रहती है। प्रकृति अपने बच्चोंमें केवल यह सन्देश नहीं भरती कि "अपनी चिन्ता करो" वरन् वह उनमें पुरातन और सार्वभौमसह अस्तित्वके सन्देशको भरती है और इसकी महत्ता उतनी ही है जितनी जीवनधारणमें प्राणोंकी।

प्रत्येक प्राणीकी जीवनरक्षाके लिए जितनी आवश्यकता भोजन और पानीकी है उतनी ही पारस्परिक मैत्रीकी। छोटे प्राणियोंकी परीक्षा लेते हुए प्राणिशास्त्र विज्ञानियोंने जाना है कि ये छोटे प्राणी भी परस्पर सहयोगकी भावनासे इतने प्रभावित होते हैं कि एक अकेला प्राणी अपने शरीरके किसी छोटेसे घावको भरनेमें काफी समय लेता है। परन्तु यदि इसके साथ इसका दूसरा साथी रख दिया जाय तो इसकी हीलिंग पावर (घाव भरनेकी नैसर्गिक शक्ति) जादुई असरके साथ बढ़ जाती है। वैज्ञानिकोंने परीक्षणोंसे पता किया है कि यदि एक छोटे चूहेको उचित भोजन और सुविधाएं दी जायें तो इतनी जल्दी उसकी वृद्धि नहीं होती जितनी कि उसके सजातीय चूहोंको साथ रखनेसे होती है।

वे प्राणी जो प्रारम्भमें अनघड होते हैं प्रायः समय पाकर उन्नत साथियोंके रूपमें परिणत हो जाते हैं। श्री आर० एम० मार्क्स– जिनका बन्दरोंपर अधिकार था– ने एक चिम्पांजीको सुगन्धित भोज्य पदार्थसे युक्त एक भारी सन्दूक दिया। वह ऊपरसे एक पूरे ढक्कनसे बन्द था। प्रसन्नतासे नथने फुलाते हुए बन्दरने इसे घसीट कर अलग ले जानेका प्रयास किया जिससे वह इसे आराम और निश्चिन्तताके साथ खोल सके। परन्तु सन्दूक उसकी शक्तिसे अधिक भारी था। बन्दरने अपने एक दूसरे साथीको ढूंढा और उसका कन्धा पकड़कर सहायताके लिए निहारने लगा। दोनोंने मिलकर आसानी बक्सेको हिलाया इसे खोला और खाद्यका मिलकर उपभोग किया।

एक अन्य प्रसंगमें एक चिम्पांजीको भोजन दिया गया और उसी स्थानपर एक बन्दरको सींखचोंके अन्दर भूखा बन्द रखा गया। लोगोंने देखा कि चिम्पांजी अपने हिस्सेमेंसे सींखचोंमेंसे बन्दरको खिला रहा है। यह परस्पर हिस्सा बांटना, मात्र हिस्सेतक ही सीमित नहीं रहता वरन् कई बार सहायतातक भी पहुंच जाता है। एक बार एक बन्दर अपनी अंगुलीमें क्षति विशेषके कारण पट्टी बांधकर दूसरे बन्दरके पास गया। डाक्टर बन्दरने इसका उपचार उतने ही उत्तरदायित्वके साथ किया जितना मनुष्य करते हैं।

मध्य और दक्षिण अमेरिकाके प्रदेशमें जो जंगल हैं उनमें छोटे प्राणियोंकी बहुतायत है। ये प्रायः अपनेसे छोटे प्राणियोंका शिकार करते हुए समूहमें घूमते हैं। इनका रुचिकर भोजन छिपकली है। परन्तु छिपकलीको पकड़कर

+ रीडर्स डाइजेस्टमें प्रकाशित पुअन डीयके लेखपर आधारित यह लेख पाठकोंके मनोरंजनार्थ यहां दिया जाता है।

मारना इतना आसान नहीं जितना खाना। अतः ये शिकारी पक्षी अपने दलको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। एक जाकर, जहां छिपकलियां कोई पक्षी होती हैं उन्हें शोर आदि मचाकर भगाता है। दूसरा दल इस अवसरके लिए सन्नद्ध रहता है और मौका मिलते ही उनकी फौज इन शिकारों-पर टूट पडती है।

अमेरिकाके श्वेत पौलिकेन्स (प्राणिविशेष) का मछली पकडनेका तरीका आन्तरिक एकताका एक प्रसिद्ध दृष्टान्त है। पौलेकेन्स फुदकते हुए आते हैं और समुद्रके किनारेपर एक बडासा अर्ध वृत्त बनाते हैं। फिर एक दूसरेके साथ बिलकुल कन्धेसे कन्धा मिलाकर, मानो कोई एक ही चीज हो, किनारेकी ओर बढते हैं। इनकी चोंच समान ऊंचाई-पर पानीसे ऊपर होती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई जिन्दा जाल चला आ रहा हो। धीरे धीरे पक्षियोंका यह वृत्त अपने पखोंसे पानीका विलोडन करते हुए कम होता जाता है। यों मछलियां ज्यों ज्यों किनारेके पास आती है त्यों त्यों अधिक छोटे घेरेमें घिरती जाती हैं। किनारेपर आकर ये सभी पक्षी मिलकर उन्हें खाते हैं। इस प्रकार परस्पर मिलकर ये पक्षी ऐसा भोजन प्राप्त कर लेते हैं जिसे अलग अलग रहकर प्राप्त कर सकना नितान्त असम्भव था।

कौआ और चील सम्मिलित बुद्धिके पुरस्कारके परिचायक हैं। फ्रासेस पिट्, प्राकृतिज्ञ शौपंश्चेयर और पशु पक्षियों पर लिखी लगभग ३० पुस्तकोंके लेखक, 'बैन' और 'जो' नामक एक चील दम्पतिके प्रति ऋणी हैं, जिनका एक बिल्लीसे परस्पर मिलकर भोजन छीनना बहुत ही आनन्द दायक था। 'बैन' बिल्लीके सामने पहुंचता था। इस समय 'जो' पीछेसे बिल्लीकी दुममें जोरसे अपनी चोंच मारता था। ज्यों ही मामलेकी तहकीकातके लिए बिल्ली पीछे देखती थी, बैन उसके सामनेसे भोजन उठाकर भाग जाता था और ये दोनों परस्पर बांटकर प्रेमपूर्वक अपनी बुद्धिके फलको खाते थे।

मैंने तीन कौवोंकी एक सामूहिक पार्टीको देखा कि उन्होंने मिलकर एक बहुत बडे उल्लूको मार मारकर टहनीसे गिरा दिया। प्राणियोंके छोटे छोटे मित्रसमूह धीरे धीरे बडी बडी सेनाओंमें परिवर्तित हो जाते हैं और यों परस्पर सहयोगकी प्रवृत्तिसे बडे बडे काम भी कर लेते हैं।

एक बार एक स्वेलो दंपतिने अपना मिट्टीका घोंसला मकानके छज्जेपर बनाया। इनके बच्चोंके पालनको देखने की इच्छासे एक प्राकृतिज्ञ एक दिन देख रहा था। एक दिन उसने देखा कि एक स्पैरो (पक्षी-विशेष) ने इसपर अपना अधिकार जमा लिया और बडे क्रोधके साथ अपनी चोंच घोंसलेके द्वारसे बाहर निकालकर बैठ गया मानो उसका यह निजी घर हो। अन्ततोगत्वा बेचारे स्वेलो परिवारको उस घोंसलेको छोडकर जाना पडा। कुछ समय पश्चात् वह स्वेलो परिवार अपने पास-पडौसके बहुतसे साथियोंकी एक बडीसी क्रुद्ध सेना लेकर वहां आया। इन सबकी चोंचमें गीली मिट्टी थी, जिससे वे अपना घोंसला बनाया करते हैं। ये पक्षी अधिकृत घोंसलेपर बैठकर परस्पर वार्तालाप करते रहे। जब ये उड गये प्राकृतिज्ञने देखा कि इस पक्षीसेनाने स्पेरोंके घोंसलेको अच्छीप्रकार मजबूतीसे सील कर दिया है और यों यह घर अन्दरवालेके लिए घर न रहकर कब्र बन गया है।

पशु-पक्षियोंके इस नाटकीय एकत्वके व्यवहारका एक चिनी प्राणीविज्ञानशास्त्री डॉक्टर एस एस. टसेने भी अध्ययन किया। उसने एक पिंजरेमें एक बिल्ली और एक चूहेको रखा। इसके साथ पारदर्शक माध्यमसे अलग होने-वाला एक खाद्य पिंजरा भी जुडा हुआ था। यह बीचका माध्यम पिंजरेके दो बटनोंके दबानेसे अलग किया जा सकता था। परन्तु दोनों बटनोंका एक साथ दोनों प्राणियों द्वारा दबाया जाना आवश्यक था। थोडी देरमें दोनों प्राणियोंने मिलकर इस समस्याका सामना किया।

यह परस्पर सृजनात्मक एकत्व सर्वप्रथम व्यक्तिगत तक सीमित रहता है। इसके पश्चात् पारिवारिक भावना आती है और फिर यह समूहमें परिवर्तित होती हुई अन्तमें मान वताका जामा पहनकर विश्वासको दृढ करती हुई सुन्दर सार्वभौम बन्धुत्वके रूपमें प्रकट होकर "वसुधैव कुटुम्ब-कम्" तक पहुंच जाती है। प्रकृति विज्ञानके विशेषज्ञोंने जब भी प्रकृतिकी दुनियाके रहस्योंमें गम्भीरतासे दृष्टिपात किया है तभी वह इस परिणामपर पहुंचे हैं कि हमारे सहानुभूति और सहयोगके आदर्श केवल काल्पनिक नहीं है। वे यथार्थ हैं। प्राणिमात्रके स्वभावमें इन आदर्शोंके बीज विद्यमान हैं।

भारतीय संस्कृतिके अनुसार
भारतीय संविधानकी समालोचना

(लेखक श्री पं० रामावतारजी, विद्याभास्कर)

[गताङ्कसे आगे]

ग्राम रचनाके भारतीय तत्व ×

एक ग्रामके रहनेवाले आपसमें 'पड़ौसी' कहाते हैं। अपने घरवाले मनुष्यके साथ मनुष्यका जो सम्बन्ध है, ग्रामकी सीमामें रहनेवाले प्रत्येक मनुष्यके साथ मनुष्यका वही मधुर सम्बन्ध है। जिस सम्बन्धमें एक परिवारके लोगोंका आपसमें रहना सम्भव और स्वाभाविक है, ग्रामका प्रत्येक परिवार, एक दूसरेके साथ उसी घनिष्ठ सम्बन्धमें बँधा हुआ है। एक परिवारमें जो परस्पर स्वाभाविक, मधुर और कल्याणकारी सम्बन्ध है, ग्रामके एक परिवारका दूसरे परिवारके साथ भी यदि वह बिगाड़ा न गया हो तो वही स्वाभाविक, मधुर और कल्याणकारी सम्बन्ध है। प्रत्येक मनुष्यको अपने ग्रामवासीकी भलाई बुराई, सुख दुख और हानि लाभका भागी होना पड़ता है। जैसे एक परिवारके लोग अपने समझे जाते हैं, वैसे ही एक ग्रामके पृथक्-पृथक् परिवारोंके लोग भी अपने समझे जाते हैं और कोई किसी भी जातिका हो आपसमें चचाताऊ भतीजे आदि कहाते हैं।

कुछ पृथक्-पृथक् परिवार एक छोटेसे भूखण्डमें इस प्रकार समाज बनाकर क्यों रहते हैं? ये सब इस प्रकार क्यों इकट्ठे हुए हैं? और ये सब इस प्रकार स्वाभाविक सूत्रमें स्वेच्छासे क्यों बँधे हैं? यदि इन प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर ढूँढने लगेंगे तो इनको इकट्ठा करनेवाला, इन्हें एक साथ बसानेवाला, इन्हें एक प्रेमसूत्रमें बांधनेवाला, एक स्वाभाविक कल्याणकारी सम्बन्ध हाथ आयेगा।

ये सब एक ही भूखण्डसे उत्पन्न हुए वस्त्र, अनाज, फल फूल तथा शाक पात आदिसे पुष्ट, तुष्ट और एक ही जलाशयका जलपान करके तृप्त होनेवाले लोग हैं। इन लोगोंने सम्पत्ति, विपत्ति, उत्सव और शोकमें एक दूसरेके सहायक रहकर जीवन धारण करनेमें अपनी निर्विघ्नता समझी है। ये एक दूसरेको अपना हितैषी समझते हैं। ये सब इसलिये इकट्ठे हुए हैं कि इनमेंसे प्रत्येक एक दूसरेको हितकारी मार्गमें लगाये रखनेकी शक्ति रखता है। इन लोगोंने संगठन करके रहनेकी शक्तिके रूपमें एक विराट् सत्यके दर्शन किये हैं। इन सबने अपने प्रत्येक आचरणमें इस सत्यको एक ही रूपमें प्रकट करके अपनेको एक ही प्रकारके रहन सहनके दृढबन्धनमें बांधकर, विराट और अमर सत्यका अधिकारी बनाया है। ये सब लोग पड़ौसीके सुख दुःख और हानि लाभमें सम्मिलित होकर सबका सबके साथ जो नित्य सम्बन्ध है उसका अनुभव करनेका अभ्यास कर रहे हैं।

ये पड़ौसी धर्मका पालन करके यह पाठ सीख रहे हैं कि "हम भी इस विश्व ब्रह्माण्ड रूपी परिवारके परिजन हैं।" यही कारण है कि इन्होंने एक साथ बसना स्वीकार किया है। जगज्जननी प्रकृति माताने ही इन सबको इकट्ठा किया है। इसी कारण ये एक दूसरेका साथ नहीं छोड़ना चाहते। जिस दिन इनके पूर्वजोंके मनमें सबसे पहले ऐसी कल्याण बुद्धि उत्पन्न हुई थी, जिस दिन इन्होंने इस कल्याण मार्गका अनुभव किया था, उसी दिनसे ये सब एक दूसरेके स्वजन बन गये थे। तब सबने अच्छेद्य मातृभावके बन्धनमें रहनेको ही संसारकी सर्वश्रेष्ठ अवस्था समझ कर इस मार्गको ग्रहण किया था। इन्होंने एक दूसरेके निकट रहकर प्रेमके बन्धनको अटूट बनाये रखनेको ही अमरता समझा था। उस दिन सबने आपसमें एक दूसरेके गुण-मुग्ध और प्रेम-मुग्ध होकर इस ग्राम-प्रणालीका आविष्कार किया था। तब प्रत्येकने यह समझ लिया था कि यदि सुखसे जीवन बिताना हो तो समाजबद्ध (ग्रामबद्ध) होकर रहनेसे अच्छी

× यह लेख लेखककी 'भारतकी अध्यात्ममूलक संस्कृति अर्थात् जाग्रतजीवन' नामक मुद्रित पुस्तकसे लिया गया है।

अवस्था नहीं हो सकती। तब सबने समाजके साथ रहनेमें ही परमार्थका पता पाया था।

इन्होंने इस ग्राम समाजको ही मानव-जीवनका श्रेष्ठ सार और सत्संग प्राप्त करनेका द्वार समझ कर ग्रहण किया था। जिस दिन ये भावनायें थीं उस दिन समाज साधुसमाज था। उस दिन समाजका प्रत्येक मनुष्य सन्त था। तब किसीके मनमें स्वार्थ व्याधिका आक्रमण नहीं होता था तब सारा समाज मिलकर सामूहिक रूपमें परमार्थकी साधना या तपस्या किया करता था। इसी कारण तब ये सब ग्राम बनाकर इकट्ठे हुए थे, एक साथ बसते थे और एक दूसरेसे अलग होना नहीं चाहते थे। तब प्रत्येकके मनमें यह समाया हुआ था कि सबसे पहले समाज कल्याणका काम करनेमें ही मनुष्यका उत्तमसे उत्तम कल्याण है। तब सब समझते थे कि जिसमें समाजका कल्याण है उसीमें व्यक्तिका कल्याण है। तब सबके मनमें यह बात बैठी हुई थी कि जगत्‌के कल्याणमें ही हमारा कल्याण है। जिस दिन इन्होंने इस महासत्यका प्रत्यक्ष अनुभव किया था, उस दिन इन्होंने अपने समाजके भीतर ही अनन्त जगत्‌के सान्त रूपको देख लिया था। तब वे इस सान्त रूपकी सेवा करके ही अनन्तकी सेवा करनेका सौभाग्य पाते थे। तब वे अपने ग्रामके समाजको ही अपना देश और समग्र मानव समाजका प्रतिनिधि मानकर व्यवहार किया करते थे। वे अपने परिवारको भी समग्र-मानव-समाजका प्रतिनिधि मानकर उसकी उचित सेवा करते थे।

वे जिस दिन इस विराट् विश्वके एक छोटेसे कोनेमें ग्राम बद्ध रहते हुए भी विश्वप्रेमी होकर अक्षय आनन्दस्वरूप स्थितिमें रहनेकी कलाको पहचान गये थे, उसी दिन इकट्ठे होकर बसे थे। तब वे सब उस एक ही विश्वपिताकी सन्तान और एक ही परिवारके प्राणी थे उस दिन उनकी आंखोंके सामने एकको दूसरेसे पृथक करनेवाली भेद-बुद्धि नहीं आई थी। तब पिशाची भेद-बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले दुष्ट स्वार्थको उनकी भूमिकी सीमामें घुसनेका अवसर नहीं मिलता था।

स्वार्थ ही मानव समाजका चिर वैरी है। स्वार्थ मनुष्यको मनुष्यसे पृथक् रखता है। स्वार्थ मनुष्यको इकट्ठा नहीं होने देता। स्वार्थी मनुष्य एक दूसरेका शत्रु बनकर रहता है। स्वार्थी मनुष्य दूसरे मनुष्यको अपने स्वार्थका कांटा समझता है। स्वार्थ ही मनुष्यको मनुष्यका शत्रु बनानेवाला है। यह स्वार्थ रूपी रुकावट मनुष्यको कल्याणरूपी परमार्थके बन्धनमें नहीं बंधने देती, और उसे आनन्दी नहीं होने देती।

परमार्थ ही मनुष्यको मनुष्यका मित्र बनाता है। परमार्थसे ही पराये लोग भी मनुष्योंके स्वजन बन जाते हैं। परमार्थ मनुष्योंको इकट्ठा करता है। परमार्थमें ऐसी शक्ति है कि यह मनुष्यको एक दूसरेके भीतर अपने स्वजनोंके भी स्वजन, परमात्माके दर्शन कराती है। परमार्थ मनुष्योंके परस्परकी भेद सीमाओंको तोडकर मनुष्यको मनुष्यके साथ एकताके सूत्रमें बांध देता है। परमार्थमें ही प्रेमका विशुद्ध रूप रहता है। परमार्थ ही सब समय और सब अवस्थाओंमें यत्नसे रक्षा करने योग्य श्रेष्ठ सम्पत्ति है। परमार्थ ही मनुष्यकी मनुष्यता है। परमार्थ ही मनुष्यका जीवन है। परमार्थके मधुर बन्धनमें संगठित मनुष्यसमाज जीवितसमाज कहाता है। परमार्थहीन मनुष्य-समाज मृत या निष्प्राण समाज होता है।

स्वार्थ ही समाजकी मौत है। स्वार्थ ही समाजका अकल्याण है। परमार्थ ही समाजका कल्याण है। समाजका अकल्याण करके अपना कल्याण करनेकी बुद्धि स्वार्थ कहाती है। समाजके कल्याणमें ही अपना कल्याण है ऐसी समझ परमार्थ कहाती है। कामनासे स्वार्थका जन्म होता है। सुखकी इच्छा कामना है। मनमें कामके जागते ही क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि सब दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसा कोई पाप नहीं रहता जिसे स्वार्थी नहीं करता। स्वार्थी मनुष्य अपने सुखके लिए समाजका अकल्याण करनेवाले सब प्रकारके पाप करने लगता है और समाजके बन्धनसे अलग हो जाता है। वह अकेला ही सब सुख-भोगोंको भोग लेना चाहता है। स्वार्थी मनुष्य अपने समाजको केवल अपने स्वार्थ-साधनका क्षेत्र समझता है। जैसे भेडिया भेड-बकरीके बच्चोंके पास इसलिये रहना चाहता है, कि वहां उसके आखेट करनेका उपयुक्त क्षेत्र है, इसी प्रकार स्वार्थी मनुष्य समाजमें केवल स्वार्थ साधनके लिये रहना चाहता है।

स्वार्थी मनुष्य अपने पडौसके लोगोंको हानि पहुंचा

कर भी स्वयं कामवान होना चाहता है। स्वार्थ ही मनुष्य समाजका भेड़िया है। वह भेड़िया गाँवके घर घरमें अपना आखेट टटोलता फिरता है। गाँवके किसी घरमें उसकी आँखोंके सामने भाई बहन माता पिता या स्वजन-बान्धव नहीं होता। गाँवके सब घरोंमें उसके भोग्य, उसके वंचनीय, उसके वध्य और उसके आखेट रहते हैं। जिस समाजमें जितने अधिक स्वार्थी होते हैं उस समाजमें उतने ही अधिक एक दूसरेके व्याध (शिकारी) रहते हैं। ऐसा समाज निर्बल हो जाता है। ऐसे समाजपर ही चालाक स्वार्थी विदेशी डाकू और लुटेरोंकी गृध्र-दृष्टि पड़ा करती है। ऐसा समाज बहुत शीघ्र डाकू और लुटेरोंका ग्रास बन जाता है, पराधीन हो जाता है, और मनुष्यतासे हीन दास बन जाता है। ऐसे समाजका समाज-बन्धन टूट जाता है और समाजका ध्वँस हो जाता है। समाजका ध्वँस करनेवाला यह भेड़िया, सबसे पहले मनुष्यके मनमें स्वार्थ-बुद्धिके रूपमें उत्पन्न होता है।

यदि समाजके प्रत्येक व्यक्तिके मनमें कर्तव्यबुद्धि जाग रही हो तो, इन भेड़ियोंके उत्पन्न होनेका अवसर नहीं रहता। जब मनुष्यमें स्वार्थ-बुद्धि आ जाती है तब उसकी अपनी कल्याणकारिणी शक्तियोंको लघबद्ध करके, सामाजिक जीवनमें, शान्ति रखनेवाली कर्तव्य बुद्धि नष्ट हो जाती है। स्वार्थबुद्धिके आजानेपर मनुष्यकी दृष्टिमेंसे सामाजिक कल्याणकी भावनाएँ भाग जाती हैं। व्यक्तिगत भोगेच्छाओंके आधारसे होनेवाले लाभ ही स्वार्थियोंके एक मात्र लक्ष्य होते हैं। स्वार्थी मनुष्य सदा सघशक्तिसे हीन अवस्थामें रहना चाहता है। उसके जीवित रहनेका इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं रहता कि वह समाजके लुटेरोंके हाथमें आत्मसमर्पण कर दे। ऐसे लोगोंको भोजन, वस्त्र आदि मिलते रहें, इनकी भोगेच्छायें तृप्त होती रहें, और ये श्वास लेते रहें, ये इतनेको ही जीवन समझते हैं। परिणाम यह होता है कि ये मनुष्योचित लक्ष्यसे हट जाते हैं। इनमें संघबद्ध होकर रहनेकी अवस्थामें रहनेवाली आत्म-शासनकी स्वाभाविक शक्तिके स्थान पर तो परतन्त्रता, निर्भयताके स्थानपर भीरुता, आत्मनिर्भरताके स्थानपर परमुखापेक्षिता, स्वाधीनताके स्थानपर पराधीनता आ जाती है और आस्तिकताका स्थान नास्तिकता ले लेती है।

*

मनुष्य आत्म-शासनकी अवस्थामें ही अपनी सामाजिक और शासन सम्बन्धी व्यवस्थाको अपने हाथोंमें रख सकता है। इस व्यवस्थाके काममें समाज द्वारा नियुक्त हुए प्रतिनिधि लोग जनसेवकका काम करते हैं। जब समाज परतन्त्र हो जाता है तब समाजकी यह शक्ति समाजके लुटेरोंके हाथोंमें पहुंच जाती है। शक्तिका स्वाभाविक स्थान बदल आनेके कारण, तब इसी शक्तिसे, घमंडी विलासी (आराम तलब) और अत्याचारी शासक सम्प्रदायका पालन होने लगता है। यह शासक-सम्प्रदाय शासनके नामसे जिस धनको लूटता है, वह उस समाजके हितके कामोंमें व्यय नहीं करता, किन्तु अपनी जेब भरने तथा अपना ऐश्वर्य बढानेमें व्यय करता है और अपने सुभीतेके लिए शहरोंकी रचना और विस्तार करता है। ऐसा शासक-सम्प्रदाय शहरोंको अपनी पैशाचिक लीला-भूमि बना लेता है। वह अपनी इस पैशाचिक लीलाको चालू रखनेके लिये ग्रामोंका शोषण करता है। स्वार्थमें डूबे रहनेके कारण निर्जीव ग्रामवासियोंके मनमें, इस अन्यायी शोषणके विरोध करनेका विचारतक नहीं आता। पड़ौसीके नाते प्रत्येक ग्रामवासीका यह पवित्र कर्तव्य है कि जिस कर्तव्यबुद्धिका अभाव होनेसे ग्रामोंमें यह बुरी अवस्था आई है, उस कर्तव्यबुद्धिको अपने ग्रामोंमें जाग्रत रखे।

समाजके कल्याणमें ही अपना कल्याण है, इस बातको ध्यानमें रखकर अपने दैनिक जीवनके काम करनेसे कर्तव्य बुद्धिकी पहचान होती है। यही मनुष्यता है। यही मनुष्यका परमार्थ है। स्वार्थहीन पवित्र मनमें ही कल्याणकारिणी बुद्धि रहती है। इसीसे मनुष्यकी दृष्टि पवित्र और कल्याणकारिणी होती है। ऐसा होनेपर ही ग्रामवासी मनुष्यको अपने पड़ौसके प्रत्येक घरमें बहन, भाई, माता, पिता और स्वजन बान्धव दीखते हैं। ग्रामोंमें उसका कोई परजन नहीं होता। पड़ौसीका कर्तव्य है कि घर-घरमें स्वजनोंसे मिलकर उनकी सेवा करके कृतार्थ होता रहे। इस धर्मको पालनेसे ही समाज सत्यके मधुर बन्धनमें बधता है। यही सच्ची स्वतन्त्रता है।

समाजमें मनुष्य जीवनके मनुष्यतारूपी सर्वश्रेष्ठ अमृतमय फलको उत्पन्न करनेवाला उपजाऊ क्षेत्र ग्राम ही है। ग्रामका प्रत्येक निवासी इस खेतका किसान है। इस खेतमें प्रत्येकका समान अधिकार है। जब ग्रामवाले इस सचाईको

पहचान जायेंगे तब ग्रामके प्रत्येक परिवार सम्मिलित परिश्रम करके अन्न, वस्त्र, जल, फल, वासगृह, भूमि आदि मनुष्य-जीवन-धारण करनेकी आवश्यक सामग्री पा सकेंगे, और ग्रामकी सच्ची सुन्दरता बढा सकेंगे। सम्पूर्ण ग्रामके उद्यमको तब ही सफलता मिलता है जब सम्मिलित और पूर्ण उद्योग किया जाता है। ग्रामवासियोंको पहलेसे ही सम्मिलित और पूर्ण उद्योग करनेका अभ्यास हो तब ही लुटेरोंका सम्मिलित विरोध किया जा सकता है और ग्राम एक प्रेम सूत्रमें बंधा रह सकता है। तब ही ग्रामवासीको निःस्वार्थपनका परिपूर्ण और अमृतमय फल मिल सकता है। ऐसा व्यवहार करनेसें ही पडौसीके धर्मका पालन होता है। पडौसीके धर्मको पालनेसे स्वतन्त्र देशोंके निर्माणका रहस्य प्रकट हो जाता है।

ग्राम्य-राष्ट्र

भारतका ग्राम समाज इतिहास कालसे भी पहलेसे छोटे छोटे स्वतन्त्र राष्ट्रोंके रूपमें निर्मित है। मनुष्य जहां कहीं भी समाजबद्ध होकर रहना स्वीकार कर लेता है वहां स्वभावसे ही उसके जीवनकी समस्त आवश्यकतायें उसके पारस्परिक सहयोगसे उत्पन्न होने लगती हैं। मानव जीवनकी समस्त आवश्यक वस्तुओंका ग्रामोंमेंसे ही उत्पन्न होने लगना, भारतीय राष्ट्रकी स्वाभाविक स्थिति है। विदेशी आक्रामकोंने अपने वैदेशिक स्वार्थसे उसकी इस स्वाभाविक स्थितिको बिगाडा है। कृषि, वाणिज्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, आत्मरक्षा आदि सब बातें राष्ट्र गठनकी ऐसी आवश्यकता है जो ग्रामवासियोंको अकृत्रिम स्वाभाविक सहयोग चाहती है। भारतके वर्तमान ग्रामसमाजमें इन सबमेंसे आत्मरक्षा करनेके अतिरिक्त अन्य सब प्रबन्ध आज भी अपने टूटे फूटे रूपोंमें विद्यमान हैं और थोडेसे अवधानसे सुधर सकते हैं। आजके भारतीय ग्रामसमाजोंमें आत्मरक्षाका तो कोई भी संगठित प्रबन्ध नहीं है। यह स्थिति वैदेशिक आक्रामकोंने पैदा की है। हमारे ग्रामोंकी यही न्यूनता उन्हे राष्ट्रोंका रूप देनेमें बाधक बनी हुई है। यदि ग्रामसमाजोंको आत्मरक्षा करनेमें समर्थ बना दिया जाय तो उन्हें स्वतन्त्र राष्ट्रोंका रूप मिलनेमें देर न लगे। हमारे ग्रामसमाज इस अपूर्णताके दूर होते ही पूर्ण स्वावलम्बी राष्ट्र बन जायेंगे और तब भारत एक सच्चा राष्ट्रसंघ बनेगा।

परन्तु यह ध्यान रहे कि राष्ट्रबन्धन न्यायकी मनोदशा पर ही आश्रित होता है। न्याय ही राष्ट्रोंका गठन कर सकता है। जो लोग राष्ट्रगठन करना चाहें उन्हें राष्ट्रमें न्याय करने और न्याय लेनेकी भावनाओंको प्रचारित करना चाहिये। न्यायने ही राज्य संस्थाको जन्म दिया है। प्रजाकी न्यायाभिलाषामेंसे ही राज्य संस्थाकी उत्पत्ति हुई है। सभी मानव न तो दूसरोंपर अन्याय करना चाहते हैं और न दूसरोंका अन्याय सहना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हम भी सबके साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करें और दूसरे भी हमसे न्यायानुकूल बरताव करें। हमें आजके ग्रामसमाजको न्यायरूपी उसी राष्ट्रीय आदर्शसे अनुप्राणित करना है जो कि दूसरोंके साथ न्याय करने तथा दूसरोंका अन्याय न सहनेकी भावनामें विद्यमान है। न्याय इसीको कहते हैं कि हम अपने पडोसीके साथ वही बर्ताव करें जो हम उससे चाहते हों।

यदि राष्ट्रके लेखक तथा वक्ता लोग राष्ट्रोद्धारके लिये निःशङ्क तथा निर्भय भावसे कटिबद्ध होकर खडे हो जाय और अपने राष्ट्रकी जनतामें न्यायको सुरक्षित रखनेकी भावनाको जगा डालें तो राष्ट्रमें इस भावनाके जागते ही समग्र ग्रामसमाजमें एक ऐसी वैद्युतिक शक्ति मंत्रशक्तिकी भांति उठ खडी होगी, जो ग्रामोंको छोटे छोटे राष्ट्रोंका रूप दिये बिना नहीं मानेगी। देशमें इस भावनाके जाते ही ग्रामोंका रहन सहन शिक्षा-दीक्षा आदि सब कुछ अबकी भांति बहिर्मुख न रहकर अन्तर्मुखी हो जायगी। तब हमें वर्तमान ग्रामीण बालकोंकी विलासिताभरी आवारा प्रवृत्तियोंके लिये रोना नहीं पडेगा। क्योंकि तब समस्त ग्राम आत्मनिर्माणमें इतने व्यस्त हो चुके होंगे कि उनके पास व्यर्थ खोनेके लिये समय नहीं रहेगा। उस समय जीवन धारण करनेकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये दूसरोंसे लूटे हुये धनसे अपना धन भंडार भरने, विलासी जीवन बिताने, ऊंचे महलोंमें बैठकर पडौसियोंकी फूसकी झोंपडी पर उपेक्षाकी दृष्टि डालने आदि दूषित प्रवृत्तियोंका संयममें आजाना अनिवार्य हो जायगा।

हम अपने समाजमें जिस स्वावलम्बी आदर्शको प्रचलित करना चाहते हैं हमें उसके लिये कहीं बाहरसे कुछ नहीं लाना है। हमें वह आदर्श समाजकी मनोवृत्तियोंमेंसे ही

विकसित करना है। वह उसमें किसी बाह्य दबावसे नहीं आना है। हम अपने समाजमें जो मनोवृत्ति जगाना चाहते हैं, उसे न्यायकी वह भावना ही जगा सकती है, जो प्रत्येक मानवके भीतर बीजरूपसे विद्यमान है। न्यायकी भावना मानव हृदयमें स्वभावसे रहती है। स्वार्थी भावना न्याय भावनाका गला घोटती रहती है और उसे अपना कार्य नहीं करने देती। मानवकी इन्द्रियां उसकी झूठी सुखाभिलाषामें ही उसकी स्वार्थी भावनाका अनुमोदन करती हैं, हृदय नहीं करता। मानवका हृदय बड़ा ही संवेदनशील है वह किसीके भी साथ अन्याय करना सहन नहीं करता। न्यायी भावनाको तो मनुष्यका हार्दिक अनुमोदन मिल जाता है। इसीसे न्यायी भावना बलवती होती है और स्वार्थी भावना निर्बल होती है। क्योंकि उसे मनुष्यका हार्दिक अनुमोदन प्राप्त नहीं होता। न्यायी भावना ही मानवचरित्रका उज्ज्वल पक्ष है। स्वार्थी भावना तो मानवचरित्रका कलंकित, घृणित, त्याज्य और कृष्णपक्ष है। जब हमारे राष्ट्रमें न्यायकी भावना जाग उठेगी उस समय हमारे देशवासियोंके मनोंमें इस ज्ञान ज्योतिका जगमगा उठना स्वाभाविक हो जायगा कि "हमारा जीवन सुख शान्तिके लिये हमारे समाजके साथ ओतप्रोत भावसे सुदृढ रूपमें जकड़ा हुआ है, हमें अपने समाजकी सुख शान्तिसे अलग या यों कहें कि उसकी सुखशान्तिकी उपेक्षा या विद्रोह करके सुखशान्ति पानेका कोई भी अधिकार और संभावना नहीं है।" हम अपने देशवासियोंके मनोंमें सार्वजनिक कल्याणभावनारूपी इसी ज्ञानज्योतिको जगाना चाहते हैं।

जिस दिन यह ज्ञानज्योति हमारे देशवासियोंके मनोंमें जाग उठेगी उस दिन हमारे देशवासियोंकी चिन्ता नदी अपने अबतकवाले स्वार्थी प्रवाहको बदलेगी, उसे एक परमार्थवाहिनी भगीरथीका रूप देगी, देशको सुखशान्ति तथा समृद्धिसे आप्लावित करेगी, तथा देशमें सतयुगको आनेके लिये विवश कर डालेगी। तब हमारे देशवासी अपनी धनजनसंपत्तिके विषयमें अबतकके समान क्षुद्र स्वार्थसे कलुषित असामाजिक ढंगसे सोचना छोड़ देंगे। और निम्न प्रकारसे सोचने लगेंगे कि "हमारे पास आ आकर संचित होनेवाला धन, हमारी व्यक्तिगत भोग्य वस्तु नहीं है। इसपर तो हमारे उपजीव्य समग्र समाजका हमारा ही जैसा अधिकार है। हम जिस विद्याका अर्जन कर रहे हैं वह विद्या हमारे व्यक्तिगत पेटकी आग बुझाने मात्रके काम आनेवाली विद्या न बनकर, हमारे संपूर्ण समाजके ज्ञाननेत्रको खोलनेका महान उत्तरदायित्व लेकर हमारे पास आ रही है। हमारे पास जो जो भौतिक सामर्थ्य आ रहे हैं वे सब हमारे समाजकी ही सदिच्छासे आ रहे हैं, वे उसीकी देन हैं और वे सब हमारे समाजके ही सामर्थ्य हैं। हमें अपने पास आनेवाले भौतिक सामर्थ्यको अपनी व्यक्तिगत संपत्ति बनानेका कोई वैध अधिकार नहीं है। हम अपने पास आनेवाले भौतिक सामर्थ्यको समाजके कल्याणके काममें आनेसे रोक नहीं सकते हैं"।

समाजके सहयोगसे अपने पास आजानेवाले सामर्थ्यको समाजसे अलग करके अपना व्यक्तिगत भोग्य बना लेनेकी कल्पना ही मूढ मनुष्यकी दरिद्रता, दुर्गुण और अयोग्यता है। जब यह उदार भावना हमारे राष्ट्रमें जाग खड़ी होगी तब हमारे राष्ट्रमें पारस्परिक उद्दिधीर्षाका जन्म होगा। तब हमारे राष्ट्रमें ग्रामसेवकों, समाजसेवकों तथा राष्ट्रसेवकोंकी बाढ आजायगी। ज्यों ही हमारे राष्ट्रका ध्यान इस राष्ट्र सेवाकी ओर जायगा, त्यों ही, या यों कहें कि ज्यों ही ग्रामसमाजके हृदयमें न्याय तथा राष्ट्रसेवाकी भावना सुप्रतिष्ठित हो जायगी त्यों ही, हमारे ग्रामसमाज सर्वांग पूर्ण राष्ट्रोंका रूप धारण कर लेंगे। तब ग्रामसभाओंके कृषि, शिल्प, वाणिज्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, आत्मरक्षा आदि समस्त विभाग ग्रामवासियोंकी सामूहिक सदिच्छासे सुसंगठित होकर भारतीय ग्रामोंकी समस्त प्रकारके परावलम्बी विचारोंको दूर कर डालेंगे ग्रामवासियोंको बेकार नहीं रहने देंगे, बेकारीके साथ साथ रहनेवाली अनैतिकताका बहिष्कार करेंगे, ग्रामसमाजमें पारस्परिक कल्याणकारी पवित्र सहयोगका वायुमण्डल बनायेंगे और स्वर्गको आज्ञा देंगे कि तुम हमारे देशमें आकर रहो।

ग्राम स्वयं ही भिन्न भिन्न पट्टियों या मोहल्लोंमें बंटे रहते हैं। प्रत्येक पट्टी-मोहल्लेके अधिवासी सर्वसम्मतिसे एक एक प्रतिनिधि दे देकर ग्रामोंकी सभाएं बनाकर अपनी अपनी पट्टियों तथा मोहल्लोंकी समस्त प्रकारकी शान्ति तथा हितकारी कर्तव्योंकी देखरेख तथा संभाल कर करके अपने अपने ग्रामोंको कल्याण सूत्रोंसे बांध डालेंगे। इस प्रकार स्वाभाविक रूपसे संगठित ग्रामसमाज ही ग्राम्य इकाईके रूपमें

पौने ६ लाख गावोंसे बने भारतीय राष्ट्रकी सबसे पहली आधार शिला (यूनिट) बनेंगे और बनकर अपने राष्ट्र भवनको सुख समृद्धिसे सम्पन्न बना डालेंगे। जब ग्रामोंमें कृषि शिल्प वाणिज्य आदिकी यथेष्ट उन्नति हो जायगी तब उनमें बेकारीका नाम भी शेष नहीं रहेगा। आज ग्रामवाले लोग अपनी उन्नतिको ग्रामकी उन्नतिसे अलग समझनेवाले बन गये हैं। वे ग्रामकी उन्नतिको अपनी उन्नतिसे अलग समझकर नौकरीके लिये नगरोंमें धक्के खाते फिरते हैं।

आज ग्रामवासियोंमें यह भावना फैली हुई है कि हम सरकारके दास हैं और सरकार हमारी मालिक है। यह भावना ही हमारे राष्ट्रका सबसे निर्बल पक्ष (सबसे कमजोर पहलू) है। यही हमारे राष्ट्रके निर्बलताका मूलरूप है। हमारा राष्ट्ररूपी पर्वत इस ग्रामव्यापी अज्ञानरूपी तिनकेकी ओटमें छिपा पडा है। राष्ट्रके इस अज्ञानरूपी तिनकेको पूरा पूरा हटाकर ही आत्मबोध कराया जा सकता है। राष्ट्रके लेखकों, अध्यापकों तथा वक्ता लोगोंको राष्ट्रव्यापी अज्ञानमयी भावनाके स्थानमें ग्रामवासियोंमें यह भाव फैलाना है कि सरकार ग्रामसमाजकी मालिक नहीं है, किन्तु ग्रामसमाज ही सरकारका मालिक है। जिस दिन राष्ट्रके लेखक, अध्यापक और वक्ता लोग ग्रामोंमें यह आत्मबोधमयी भावना फैलानेमें सफल हो जायेंगे कि हम ग्रामवासी लोग ही सरकारके मालिक हैं उस दिन हमारे देशमें आत्मोन्नतिकी भावना अपने आप जाग उठेगी। हमें तो ग्रामवासियोंको यही समझाना है कि सरकार हमारी प्रभु नहीं किन्तु हम ही सरकार बनानेवाली सरकार हैं। दूसरे शब्दोंमें हम ही सरकार हैं।

आज जो हमारे देशकी दुर्दशा है वह न तो आर्थिक दरिद्रताकी पैदा की हुई है, न उसे अन्नकी समस्याने पैदा किया है, न उसने बेकारीसे जन्म पाया है, और न वह किन्हीं अभावोंकी सन्तान है। वह तो देशमें मानसिक शक्ति न रहनेसे पैदा हुई है कि हमारा देश इसीलिये दुर्दशाग्रस्त है कि उसके पास मनोबल नहीं है। देशमें भौतिक सामर्थ्य पैदा करनेवाली शक्तिका अभाव नहीं है। भारतकी सबसे बडी हानि तो यह हुई है। इसमेंसे आत्मविश्वासरूपी राष्ट्र निर्मात्री शक्ति जाती रही है। इसीसे इसे दुर्गत रहना पड रहा है। भारतमें आत्मविश्वासके न होनेसे उसकी उत्पादिका शक्ति भी खोई पडी है।

आज भारतमें सुखशान्तिके आदर्शके विषयमें भारी दिग्भ्रम है। सुखशान्तिके संबन्धमें यह दिग्भ्रम ही भारतकी दुर्दशाके कारण हैं। भारतके दिग्भ्रमको मिटा डालना ही इस दुर्दशाका एकमात्र प्रतिकार है। सुखशान्तिके भ्रान्त दृष्टिकोणने ही देशको सब प्रकारसे दरिद्र बना रक्खा है। यह सुनिश्चित सचाई है कि भारतके इस दृष्टिकोणको सुधारते ही सर्व प्रकारकी समृद्धियां तत्क्षण अपने आपको देशमें ला उपस्थित करेंगी। आजके भारतीयने अपने स्वार्थको अपने समाजसे अलग मान लिया है। भारतमें जितनी बुराई और पाप फैला है वह अपने और समाजके स्वार्थको दो अलग अलग स्वार्थ माननेसे फैला है। वास्तविकता यह है कि समाज और व्यक्तिके स्वार्थ अलग अलग नहीं है। जिसमें समाजका कल्याण है उसीमें व्यक्तिका भी कल्याण है। जिसमें समाजका कल्याण नहीं है उसमें व्यक्तिका भी कल्याण नहीं है। व्यक्तिका समाजविरोधी कल्याण कल्याण न होकर कल्याणाभास है। ग्रामसमाजके सार्वजनिक लाभसे अलग करके अपने किसी अलग स्वार्थकी कल्पना करना ग्रामनिवासीका उत्तरदायित्व तथा सामाजिक संगठनसे हीन आत्मघाती जीवन है।

सामाजिक संगठन तो सामाजिक कल्याणके संबन्धमें उत्तरदायित्व पूर्ण बुद्धि रखनेसे ही होना संभव है। सामाजिक संगठनके लिये, लोगोंमें सामाजिक कल्याणके संबन्धमें उत्तरदायित्व बुद्धिका होना या उसे उत्पन्न करना अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। मनुष्यका अपने ग्रामसमाजके साथ जो संबन्ध हैं वह एक प्रकारका पारिवारिक संबन्ध है। वह कोई नगरोंवाला अपेक्षात्मक संबन्ध नहीं है। पारिवारिक संबन्ध निःस्वार्थ संबंध है। जैसे अपने परिवारसे पृथक होना जीवनदाता माता पिताके साथ अकृतज्ञता है उसी प्रकार ग्रामसमाजसे पृथक् स्वार्थपूर्ण जीवन बितानेकी भावना अपनी राष्ट्रमाताके प्रति अकृतज्ञतारूपी आत्मघाती जीवन है। इस प्रकारका जीवन किसी भी विचारवान् मनुष्यको कैसे रुचिकर हो सकता है ? मनुष्यका तो अपने ग्रामसमाजके साथ स्वाभाविक कल्याणकारी संबन्ध है। इस संबन्धको ठीक ठीक समझकर उत्तरदायित्वपूर्ण जीव-

मको अपनाना ही शान्तिके मार्गको अपनाना है। मनुष्यको चाहिये कि वह इस संबन्धको ठीक ठीक पहिचान जाय और उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन बिताया करे। आजका ग्रामवासी समाजके प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व न मानकर दूसरोंके साथ मर्यादाहीन व्यवहार करनेमें आगा पीछा नहीं देखता। ग्रामवासियोंकी जीवनधारा असंयतरूपमें बह रही है। ग्रामवासियोंकी असंयत रूपमें बहती हुई जीवनधाराको अनुपम आदर्श मार्गपर बहानेके लिये यह आवश्यक है कि ग्रामवासियोंको उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन बिताना सिखाया जाय और इस प्रकारका जीवन बितानेके दृष्टिकोणको बहिर्मुखी भ्रान्तिके मायाजालसे मुक्त करके उसे उनके जीवनोंमें जीता जागता रूप देकर रक्खा जाय।

शताब्दियोंसे राष्ट्रके प्रति अनुत्तरदायी रहते रहते परिणाम स्वरूप आजके ग्रामसमाजमें आत्मविश्वासका सर्वथा अभाव हो गया है। आजके भारतीय ग्रामसमाज अपनेको दीन हीन और नगण्य मानकर राष्ट्रको भी दीनहीन और नगण्य बना रहे हैं। यद्यपि ग्राम ही भारतीय राष्ट्रके निर्माता, पालक, पोषक तथा आश्रय हैं परन्तु हमारे ग्रामवासियोंका अपनेको राष्ट्रनिर्माताके रूपमें न जानना ही हमारे राष्ट्की हीनताका स्वरूप है। हमारा राष्ट्र स्वाभिमानी राष्ट्र उस दिन बनेगा जिस दिन ग्रामवासीको अपने राष्ट्र निर्माता रूपका पता चलेगा। जिस दिन हमारे ग्रामसमाजमें आत्मविश्वास और आत्मबोध जागेगा उसीदिन हमारा राष्ट्र सच्चे अर्थोंमें राष्ट्र बनेगा। आज तो भारतीय ग्रामोंकी नपुंसकतासे हमारा सारा ही राष्ट्र एक नपुंसक राष्ट्र बना हुआ है। आजका ग्रामवासी शहरोंको चमकदमक टीपटापके भुलावेमें आकर रोटीका भूखा बनकर उन शहरोंको भाग रहा है जिन्हें वह अपने भुज बलसे कमा कमाकर पाल रहा है। यह कितने परितापका विषय है कि भारतके ग्राम ही तो भारतके नगरों तथा समस्त राष्ट्रको पाल रहे हैं और उसी भारतका ग्रामवासी अपने शहरी आकाओंकी दुर्नीतिकी कृपासे शहरोंको भागा आ रहा है। समग्र राष्ट्रका पालनपोषण करनेवाली कृषि वाणिज्य शिल्पादि संपत्ति गांवोंमें ही विद्यमान है। गांव ही शहरोंको अन्न वस्त्र तथा जीवनकी संपूर्ण आवश्यकता दे देकर उन्हें पाल रहे हैं।

अब ग्रामवासी अपनी अन्नपूर्णा जननीकी उदार गोदको अस्वीकार करके अन्नके ही लिये गांव छोडकर जाता है तब वास्तवमें अपने स्वाभाविक समृद्धिभण्डारको त्यागकर भिखमंगा बन जाता है। आज ग्रामोंमें यही दृष्टिभ्रम फैला हुआ है। आज ग्रामोंका आत्मबोध हर लिया गया है। ग्रामोंके इस अनात्मबोधने सारे राष्ट्रको दिवालिया, कंगाल, अनुत्साही, अनात्मविश्वासी, परावलम्बी तथा शहरियोंको चाटुकार बना डाला है। ज्योंही ग्रामवासीके इस दृष्टि विभ्रमको सुधार दिया जायगा और उसे आत्मबोध करा दिया जायगा त्योंही भारतकी भाग्यलक्ष्मी पुनः गांवोंमें लौटेगी और वहीं प्रतिष्ठित हो जायेगी। गांवोंके इस दृष्टि विभ्रमको सुधारते ही ग्रामवासीकी मानसचक्षु अपनी अन्तर्निहित सुषुप्त शक्तिको देखेगी, उसे जगाकर खडा करेगी और ग्रामोंमेंसे ही अपने जीवनके कल्याणकारी आधारोंको ढूंढ ढूंढकर निश्चिन्तता, कर्तव्यनिष्ठा तथा उत्तरदायित्वके साथ ग्रामोन्नति करनेमें ही अपनी उन्नतिकी तालीं पा लेंगी।

ग्राम ही ३६ कोटि भारतवासियोंकी जन्मभूमि है। इस बातको कौन अस्वीकार कर सकता है कि हमारे सम्पूर्ण राष्ट्की प्रतिभायें ग्रामोंमें ही उत्पन्न हो रही हैं। परन्तु यह कितने दुःखकी बात है कि विदेशोंका अंधानुकरण करनेवाली हमारी अभागी शासनव्यवस्था ग्रामोंकी इस प्रतिभाको विकसित न होने देनेका निन्दनीय षड्यन्त्र रच रही है। शहरी लोग ही हमारे राष्ट्के मालिक बने बैठे हैं। ये लोग अपनी चालाकियोंसे हमारे राष्ट्के मालिक बनकर उसे अपने स्वार्थकी लीलाभूमि बनाकर रख रहे हैं। हमारी वर्तमान राज्यव्यवस्थामें ग्रामवासीका कहीं भी स्थान नहीं है। हमारी समग्र राष्ट्रव्यवस्था चालाक शहरी लोगोंके हाथोंका खिलौना बनी हुई है। हमारी वर्तमान राज्यव्यवस्था इतनी दूषित और विवेकहीन है कि वह जिन ग्रामवासियोंके टुकडेसे पल रही है, उन ग्रामवासियोंको अपनी प्रतिभाओंके विकासके अवसर, साधन तथा प्रोत्साहन नहीं दे रही हैं और ये ग्रामीण प्रतिभायें जंगलमें खिले फूलोंके समान ग्रामोंमें पडी नष्ट हो रही हैं।

आज हमारे ग्राम अपनी प्रतिभाके विकासके अवसर-साधन तथा प्रोत्साहन न पाकर सुगन्धित पुष्पोंको खिलानेवाले जंगलोंके समान उपेक्षित हो रहे हैं। आज यह हमारी

राष्ट्रिय आवश्यकता है कि ग्रामोंको उनकी आत्मशक्तिका पता दिया जाय और प्रतिभाके विकासके अवसर, साधन तथा प्रोत्साहन देकर उनके लिये आत्मोन्नतिके कपाट खोलकर अपने देशको उन्नत होनेका अवसर दिया जाय। आप देखेंगे कि ग्रामोंको आत्मशक्तिका पता चल जाना मात्र सम्पूर्ण राज्यव्यवस्थाका उनके हाथोंमें चला जाना हो जायगा। ग्रामोंको आत्मबोध होते ही हमारी राज्यव्यवस्था नौकरशाही बननेके लिये लालायित इन शहरी लोगोंके हाथोंमेंसे निकलकर निष्कपट ग्रामवासियोंके हाथोंमें चली जायगी। ज्योंही ग्रामोंको आत्मबोध होगा और ज्योंही वे राज्यव्यवस्थाको अपने हाथोंमें लेंगे त्योंही ग्रामोंकी संपूर्ण शक्ति उनकी चिन्ताधाराको सुपथमें प्रवाहित करके संपूर्ण राष्ट्रकी दरिद्रता दूर किये बिना नहीं मानेगी।

भारतके प्रजातन्त्रका सबसे मुख्य काम शासनव्यवस्था-की सबसे पहली इकाई (यूनिट) ग्रामसमाजको स्वाभाविक शक्तिसम्पन्न बनाना है। प्रत्येक ग्रामको छोटे छोटे राष्ट्रोंका रूप दे देना ही ग्रामोंको शक्तिसम्पन्न बनाना है। प्रत्येक ग्रामरक्षा, न्याय, शिक्षा, स्वच्छता, स्वास्थ्य, चरित्र, कृषि, शिल्प, वाणिज्य तथा अर्थसंरक्षाके कामोंमें पूर्ण स्वतन्त्र हों। प्रत्येक ग्रामके पास ग्रामीण स्वयं युवकोंसे संगठित सेनायें हों, जो डाकुओं, लुटेरों तथा बाह्य विदेशी आक्रमणों-से ग्रामोंको सुरक्षित रखें। अपने परिवारोंकी रक्षाके लिये प्रत्याक्रामक रूपमें लडनेवाली इन सेनाओंमें, वेतनके लाल-चसे लडनेवाली सेनाओंसे दसों गुनी शक्ति और उत्साह होना स्वाभाविक है। राष्ट्रको केवल बाह्य आक्रमणोंके लिये केन्द्रिय सेनाकी आवश्यकता रहनी चाहिये। ग्रामीण राष्ट्र-की रक्षाका उत्तरदायित्व तो ग्रामोंपर ही रक्खा जाना चाहिये।

इससे सम्पूर्ण राष्ट्रको सैनिक अनुभव होनेसे ग्रामीण राष्ट्रोंमेंसे बडे बडे रणकुशल सेनापति मिलने सुलभ हो सकेंगे और उनके रणकौशलसे देश सुरक्षित रक्खा जा सकेगा। सैन्यका केन्द्रीकरण तथा समग्र समाजको असैनिक बना डालना तो विदेशी ब्रिटिश लोगोंकी सूझ थी। वे समग्र राष्ट्रको नपुंसक रखकर नपुंसक राष्ट्रपर शासन करना चाहते थे। उन्हें डर था कि यदि ग्रामीण राष्ट्रको सशस्त्र और सशक्त रहने दिया गया तो यह कभी भी हमसे अपना अधिकार छीन लेगा। इसलिये देशको निःशस्त्र रखना उनके वैदेशिक स्वार्थके अनुकूल था। परन्तु हमारी समझमें नहीं आता कि हमारी यह काँग्रेसी सरकार ब्रिटिश स्वार्थसे निर्मित शस्त्रकानूनको अभीतक क्यों नहीं हटाती? प्रतीत होता है इसे भी राष्ट्रको नपुंसक रखकर नपुंसक राष्ट्रपर शासन करना अपनी हितरक्षाके लिये उपयुक्त दीख रहा है। इन्हें तो सैन्यशक्तिका ग्राम ग्राममें विकेन्द्रीकरण करके अपने ग्रामोंको एक एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप देकर सेनाके व्ययको भी कम कर लेना चाहिये था तथा देशको भी आत्मरक्षा करनेमें समर्थ बना देना चाहिये था। देशकी आन्तरिक रक्षाके विषयमें निश्चिन्त हो जाना चाहिये था और अपने राष्ट्रको एक अजेय राष्ट्र बना लेना चाहिये था।

सैन्यका केन्द्रीकरण राष्टके लिये महान् संकट है। इससे कोई भी प्रबल बाह्य आक्रमक राष्ट्र भारतपर आक्रमण करके चार मैदान जीतकर सारे राष्ट्रपर अधिकार जमा सकता है। यदि हमारा ग्रामीण नपुंसक राष्ट्र अब की ही भांति उसका विरोध करनेमें असमर्थ रहता चला गया तो देशपर विदेशी आधिपत्यकी समस्त संभावनायें बनी रहेंगी। इस दृष्टिसे ग्रामोंको तुरन्त सशस्त्र बनाकर सबको स्वयं-सेवकोंसे संगठित सेनाओंसे सुसज्जित करनेकी योजना आज से ही चालू करना चाहिये, शस्त्र कानूनको तुरन्त रद्द कर देना चाहिये। इसके बिना राष्ट्रका कल्याण नहीं है। यदि हमारे राष्ट्रपर विपत्ति आ गई तो हमारे कर्णधारोंके लेक्चरोंसे राष्ट्रकी रक्षा नहीं हो सकेगी। तब तो ग्रामोंकी अपनी सशक्त सेनायें ही राष्ट्रका सम्मान बचा सकेंगी।

ग्रामीण क्षात्रशक्तिको जगाये बिना या ग्रामोंको स्वतन्त्र राष्ट्रोंका रूप दिये बिना हमारे राष्ट्रमें वीर पुरुष उत्पन्न होने बन्द हो जावेंगे। ब्रिटिश लोगोंने ग्रामीण क्षात्रशक्तिको डरा धमकाकर सुला कर इसे एक नपुंसक राष्ट्रका रूप दे डाला है। इसलिये राष्ट्रको सशक्त राष्ट्रका रूप देनेकी तत्काल गंभीर आवश्यकता है।

[क्रमशः]

दिव्य जीवन

[श्री अरविंद]

अध्याय २१

[गताङ्कसे आगे]

जिस समय प्राण अपनी तीसरी भूमिकामें, जिसे कि हम जीवन-शक्ति कहते हैं, पहुंचता है तो विपरीत क्रिया प्रधान हो जाती है और प्राणिक अहंका भौतिक आधार विलयको स्वीकार करनेके लिए विवश होता है। इसके भौतिक आधारके घटक अवयव छिन्नभिन्न हो जाते हैं जिससे कि एक प्राणके दैहिक तत्त्वोंका दूसरे प्राणोंके देहोंके निर्माणमें प्रवेश कराया जा सके। यह नियम जिस सीमा-तक प्रकृतिमें कार्य करता है उसे पूरी तरह नहीं पहचाना गया है और वस्तुतः तबतक पूरी तरह नहीं पहचाना जा सकता जबतक कि हमारे पास मानस प्राण और अध्यात्म सत्ताका विज्ञान इतना सुदृढ न हो जितना कि भौतिक प्राण और भौतिक सत्ताका विज्ञान है। परन्तु फिर भी हम स्थूलरूपमें यह देख सकते हैं कि न केवल हमारे भौतिक देहके तत्त्व, अपितु हमारे सूक्ष्मतर प्राणमय पुरुषके तत्त्व, हमारी प्राण-शक्ति, हमारी कामना-शक्ति, हमारे बल, प्रयास, रागावेश हमारे जीवन कालमें और मृत्युके अनन्तर दोनों अवस्थाओंमें दूसरोंकी प्राण-सत्तामें प्रवेश करते हैं।

प्राचीन गुह्य-विद्या हमें बतलाती है कि भौतिक (अन्न-मय) शरीरके समान हमारा एक प्राणमय शरीर भी होता है और यह भी मृत्युके अनन्तर छिन्नभिन्न हो जाता है और दूसरे प्राणमय शरीरोंके निर्माणके लिये अपने आपको दे देता है। हमारी प्राण-शक्तियां हमारे जीवन कालमें दूसरे प्राणियोंकी शक्तियोंसे निरंतर मिश्रित होती रहती है। इसी प्रकारका विधान हमारे मानस जीवनके दूसरे सविचार जीवोंके मानस जीवनके साथ परस्पर संबंधोंमें भी कार्य करता है। एक मनके दूसरे मन पर आघातके द्वारा मनके तत्त्वोंका निरंतर विघटन, विकिरण और पुनर्निर्माण होता है जिसके साथ साथ तत्त्वोंका निरंतर आदान-प्रदान और सम्मिश्रण हुआ करता है। एक सत्ताका दूसरी सत्ताके साथ आदान-प्रदान, अन्तर्मिलन और सम्मिश्रण प्राणका स्व-कर्म और स्वधर्म है।

अतः हम देखते हैं कि प्राणमें दो तत्त्व हैं, प्रथम पृथक् अहं की यह आवश्यकता या इच्छा कि वह स्वतंत्र (पृथक्) रूपमें अतिजीवी रहे और अपने व्यक्तित्वको सुरक्षित रखे; दूसरे, प्रकृतिके द्वारा उसे विवश किया जाना कि वह दूसरोंके साथ सम्मिश्रित हो। जड जगत्में प्रकृति पहले अन्तर्वेग पर अधिक बल देती है। कारण इसकी यह आव-श्यकता है कि वह दृढ-स्थिर पृथक् रूपोंकी सृष्टि करे; क्योंकि उसके लिये यह सबसे पहली और वस्तुतः अत्यन्त कठिन समस्या है कि वह शक्तिके अविच्छिन्न प्रवाह एवं गतिमें और अनन्तके ऐक्यमें किसी ऐसे पदार्थकी सृष्टि कर दे और उसे बनाये रखे जैसे कि पृथक् अतिजीवी व्यक्ति और उसके लिए दृढ-स्थिर रूप (देह) हैं। इसलिये आणविक जीवनमें व्यक्तिगत रूप आधार-रूपमें बना रहता है और वह दूसरोंके साथ संयोगसे संयुक्त रूपोंकी अधिक या कम दीर्घकालीन सत्ताको प्राप्त कर लेता है; ये संयुक्त रूप प्राणिक और मानसिक व्यक्तित्वोंके निर्माणमें आधार होते हैं।

परन्तु जैसे ही प्रकृति इस विषयमें इतनी पर्याप्त दृढता को प्राप्त कर लेती है कि जिससे वह अपने दूरवर्ती व्यापा-रोंको सुरक्षित रूपमें कर सके, वह अपनी कार्यप्रणालीको विपरीत कर देती है; व्यक्तिगत रूप (देह) नष्ट हो जाता है और इस प्रकार छिन्नभिन्न हुए रूपके तत्त्वोंसे संयुक्त-प्राणको लाभ पहुँचता है। परन्तु यह अन्तिम भूमिका नहीं हो सकती; अन्तिम भूमिका केवल तभी प्राप्त हो सकती है जब कि दो तत्त्व समंजस हो जाते हैं, जिस समय कि व्यक्ति एक ओर अपने व्यक्तित्वकी चेतनाको बनाये रखता है और दूसरी ओर वह दूसरोंमें अपने आपका मिश्रण कर देता है और इस मिश्रणसे आत्म-परिरक्षक समतुलनमें कोई विकार नहीं आता और न अतिजीवनमें कोई बाधा पहुंचती है।

समस्याके इन रूपोंसे मनके पूर्ण उद्गमका पूर्वाभास मिलता है; कारण सचेतन मनके बिना जीवन-शक्तिमें समीकरण नहीं हो सकता, अपितु केवल एक तात्कालिक अस्थिर समतुलन हो सकता है जिसका अन्त होगा देहकी मृत्यु, व्यक्तिका छिन्नभिन्न होना और उसके अंगभूत तत्वोंका विश्वमें विकिरण। दैहिक प्राणकी प्रकृति इस प्रकारकी है कि जिन परमाणुओंका व्यक्तिगत रूप (देह) बना होता है उनके समान स्थित रहनेकी वह नैसर्गिक शक्ति नहीं रख सकता और इसलिए अपनी व्यक्तिगत सत्ताको निरंतर बनाये नहीं रख सकता। वह केवल मनोमय पुरुष है जो इस प्रकार स्थित रहनेकी आशा कर सकता है; कारण उसके साथ चैत्य पुरुषका संबंध हो जाता है और उसके भीतर गुहा अन्तरात्मा अपने आपको अभिव्यक्त करता है या करने लगता है; उसमें यह शक्ति होती है कि वह अतीतको भविष्यके साथ जोडकर नैरन्तर्यकी धारा बना देता है।

देहके छिन्नभिन्न होनेसे यह हो सकता है कि देहके अंगोंमें नैरन्तर्यकी स्मृति न रहे, किन्तु मनोमय पुरुषमें उसका नष्ट होना आवश्यक नहीं है; और अन्तिम उन्नति होनेपर यह भी संभव है कि मृत्यु और जन्मसे जो दैहिक स्मृतिकी खाई पड जाती है वह उससे पट जाय परन्तु चाहे जैसा भी वर्तमान अवस्था हो, अपने वर्तमान विकास की चाहे जैसी सदोष अवस्थामें देहधारी मन क्यों न हो, मनोमय पुरुष देहके जीवनसे परे भूत और भविष्यके समूहकी चेतना रखता है। मनोमय पुरुष उस व्यक्तिगत अतीतको, उन अतीत जीवनोंको जानता है जिन्होंने उसके वर्तमान जीवनको बनाया है और जिनका कि वह स्वयं परिवर्धित और परिवर्तित पुनरुत्पादन है; वह अपने उन भावी व्यक्तिगत जीवनोंको भी जानता है जिन्हें कि उसका वर्तमान जीवन अपनेसे सृष्ट कर रहा है।

वह उस भूत और भावी समष्टि जीवनको भी चेतना रखता है जिसमें उसकी अपनी नैरन्तर्य-धारा एक सूत्रके समान है। इस विषयको भौतिक विज्ञान वंशपरम्पराके रूपमें जानता है; मनोमय पुरुषके पीछे रहनेवाला विकासमान अन्तरात्मा इसे स्थायी व्यक्तित्वके रूपमें जानता है। अतः मनोमय पुरुष, जो कि इस आन्तरात्मिक चेतनाको अभिव्यक्त करता है स्थायी व्यक्तिगत जीवन और स्थायी समष्टि-जीवनकी ग्रन्थि है; उसमें इन दोनोंका मिलन और सामंजस्य संभव हो जाते हैं।

प्रेमपूर्वक सम्मिलन इस नवीन संबंधका गुह्य तत्व और उन्नत शिखर है; यह इस संबंधका आदर्शरूप है, इसकी शक्ति है और इसलिए प्राणकी तीसरी भूमिकामें विकासका प्रधानतत्व है। प्रेम-तत्त्वकी क्रियाके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्वको सचेतनभावसे परिरक्षित रखते हुए दूसरे व्यक्तियोंके साथ आदान-प्रदान, आत्मप्रदान और संमिश्रणकी आवश्यकताको सचेतनभावसे स्वीकार करे और इनकी कामना करे। कारण यदि आत्म-परिरक्षण और आत्म-प्रदान इन दो में से कोई एक नष्ट हो जाता है तो प्रेमकी क्रिया बंद हो जाती है, चाहे उसके स्थानपर कुछ भी क्यों न आजाय। पूर्णतया आत्म-बलिदानके द्वारा, यहां तक कि जिसमें आत्मविनाशका भ्रम (भाव) भी रह सकता है, प्रेमको परिपूर्ण करनेका एक विचार, एक अन्तवेग निःसन्देह मनोमय पुरुषमें रहता है; परन्तु यह प्राणकी तीसरी भूमिकासे ऊपरकी अवस्थाको सूचित करता है।

यह तीसरी भूमिका वह अवस्था है जिसमें कि हम परस्पर भक्षणके द्वारा जीवित रहनेके लिए संघर्षसे और इस संघर्षके द्वारा योग्यतमके अतिजीवनसे क्रमशः ऊपर उठते हैं। कारण इस भूमिकामें परस्पर सहायताके द्वारा अधिकाधिक अतिजीवन प्राप्त किया जाता है और परस्पर अनुकूलीकरण, आत्मप्रदान, आदान-प्रदान और संमिश्रणके द्वारा अधिकाधिक अपने आपको पूर्ण किया जाता है। जीवनसत्ताका आत्म-दृढीकरणरूप है, यहांतक कि अहंका परिवर्धन और अतिजीवन है; किन्तु इस भूमिकाओंमें वह उस सत्ताका आत्मदृढीकरण है जो कि दूसरी सत्ताओंकी आवश्यकता अनुभव करती है, ऐसे अहंका परिवर्धन और अतिजीवन है जो कि दूसरे अहंकारोंसे मिलना, उन्हें अपने जीवनमें अन्तर्गत करना और स्वयं उनके जीवनमें अन्तर्गत होना चाहता है।

विकासकी इस तीसरी भूमिकामें वही व्यक्ति और समूह अतिजीवनके लिए योग्यतम होंगे जो अपनेमें सम्मिलन, प्रेम और परस्पर सहायता-रूप धर्मका, दया, स्नेह, सख्यभाव, ऐक्यका विकास करेंगे, जो अतिजीवन और पारस्परिक

आत्मप्रदानको अत्यन्त सफलताके साथ समंजस करेंगे; परस्पर आदानप्रदानके द्वारा समूह व्यक्तिका वर्धन करेगा और व्यक्ति समूहका, इसी प्रकार व्यक्ति व्यक्तिका और समूह समूहका वर्धन करेगा।

इस विकाससे यह सूचित होता है कि मनका * आधिपत्य बढ़ता जा रहा है और वह अपने विधानको भौतिक सत्ता पर क्रमशः अधिकाधिक स्थापित कर रहा है। क्योंकि मन अधिक सूक्ष्म होनेके कारण यह आवश्यकता नहीं रखता कि वह आत्मसात, अधिकृत और वर्धन करनेके लिए भक्षण करे; इसकी अपेक्षा जितना ही अधिक वह देता है उतना ही अधिक वह ग्रहण और वर्धन करता है, और जितना अधिक वह अपने आपको दूसरोंमें संमिश्रित करता है उतना ही अधिक वह दूसरोंको अपनेमें संमिश्रित करता है और अपने सत्ताके क्षेत्रको विस्तृत करता है।

दैहिक प्राण अत्यधिक दानसे क्षीण हो जाता है और अत्यधिक भक्षणसे नष्ट हो जाता है। मन जितने परिमाणमें भौतिक द्रव्यके धर्मकी ओर झुकता है उतना ही वह उसकी परिच्छिन्नतामें बंधता है; किन्तु दूसरी ओर जितने परिमाणमें वह अपने स्वधर्मकी ओर प्रगति करता है उतने ही परिमाणमें वह इस परिच्छिन्नता पर विजयी होता है; और जितने परिमाणमें वह इस भौतिक परिच्छिन्नता पर विजयी होता है उतने ही परिमाणमें दान और ग्रहण एक होते जाते हैं। कारण तब वह अपने ऊर्ध्व आरोहणमें भेदाभेदके नियमकी ओर सचेतन भावसे वर्धित होता है, भेदाभेदका नियम अभिव्यक्त सच्चिदानन्दका दिव्य धर्म है।

प्राणकी पहली भूमिकाका दूसरा रूप है अवचेतन इच्छा जो कि दूसरी भूमिकामें भूख और सचेतन कामना हो जाती है, भूख और कामना सचेतन मनके प्रथम बीज हैं। सम्मिलन-तत्त्वके द्वारा प्राणका तीसरी भूमिकामें वर्धन, प्रेमका वर्धन, कामनाके विधानका विनाश नहीं करता अपितु उसका रूपान्तर करता है और उसे परिपूर्ण करता है। प्रेमका स्वरूप है अपने आपको दूसरोंको देने और बदलेमें उन्हें लेनेकी कामना; यह दो सत्ताओंका परस्परमें लेनदेनका व्यापार है। दैहिक प्राण अपने आपको देनेकी कामना नहीं करता, वह केवल ग्रहण करनेकी कामना करता है। यह सत्य है कि उसे अपने आपको देनेके लिए विवश होना पड़ता है, कारण जो प्राण केवल ग्रहण करता है देता नहीं— यदि ऐसा प्राण इस लोकमें या किसी भी लोकमें पूर्णतया संभव है तो- वह अवश्यमेव बजर, क्षीण और नष्ट हो जायगा।

परन्तु वह जो देता है विवश होकर देता है, स्वेच्छासे नहीं देता, वह प्रकृतिके अवचेतन अन्तर्वेगके वशीभूत होकर वैसा करता है, सचेतन भावसे उसमें भाग नहीं लेता। यहांतक कि जब प्रेमका प्रवेश हो जाता है तब भी आत्मप्रदान प्रारम्भमें काफी अधिक सीमातक परमाणुकी अवचेतन इच्छाके जड स्वभावको बनाये रखता है। स्वय प्रेम भी प्रारंभमें भूखके विधानका पालन करता है और दूसरोंको देने और समर्पण करनेकी अपेक्षा उनसे ग्रहण करना और छीन लेना चाहता है; यदि वह दूसरोंको देता और समर्पण करता है तो मुख्यतया इसलिए कि वह समझता है कि जिस वस्तुकी वह कामना करता है उसके मूल्यके रूपमें उन्हें देना आवश्यक है। परन्तु यहां प्रेम अपने सच्चे स्वभावको नहीं प्राप्त कर सका है; इसका सच्चा धर्म है ऐसे समान लेनदेनकी स्थापना करना जिसमें कि देनेका हर्ष लेनेके हर्षके समान होता है और अन्तमें अधिक होने लगता है।

परन्तु अधिक तब होता है जब कि चैत्य-ज्वालाके दबावमें पूर्ण ऐकाकी परिपूर्णताको प्राप्त करनेके लिए प्रेम अपनेसे अतीत होने लगता है और इसलिए उसे यह अनुभव करना होता है कि जो उसे अनात्मा प्रतीत होता था वह उसके अपने व्यक्तित्वकी अपेक्षा उसका महत्तर और प्रियतर आत्मा है। परन्तु प्राण जन्य जो प्रेम है उसका धर्म है

* यहां जिस मनके विषयमें कहा गया है वह वह है जो कि हृदयके द्वारा प्राणमें, प्राणमय पुरुषमें क्रिया करता है। यहां प्रेमसे हमारा अभिप्राय सापेक्ष प्रेमसे है न कि निरपेक्ष प्रेमसे; प्रेम-सापेक्ष प्रेम न कि निरपेक्ष प्रेम-प्राणका धर्म है न कि मनका, परन्तु जब मन इसे अपने प्रकाशमें ले लेता है तब यह अपने सच्चे स्वरूपमें आने लगता है और स्थायी होने लगता है। शरीरमें और प्राणिक अगोंमें जो प्रेम कहा जाता है वह अधिकतम अंशमें भूखका एक रूप होता है जिसमें स्थायित्व नहीं होता।

दूसरोंमें और दूसरोंके द्वारा अपने आपको अनुभव और परिपूर्ण करनेका अन्तर्वेग, दूसरोंको समृद्ध करते हुए समृद्ध होना, अधिकार करना और अधिकृत होना क्योंकि दूसरेसे अधिकृत हुए विना प्राणी अपने आपपर पूर्णतया अधिकार (अपने आपको प्राप्त) नहीं कर सकता।

आणविक सत्ताकी जो अपने आपको अधिकृत करनेकी जड अशक्ति है, जड व्यक्तिकी जो अनात्मा (अपनेसे भिन्न) के प्रति आधीनता है वह प्राणकी पहली भूमिकाकी अवस्था है। परिच्छिन्नताकी चेतना और आत्मा (स्व) एवं अनात्मा (पर) दोनों पर अधिकार करने, प्रभुत्व करनेके लिए संघर्ष दूसरी भूमिकाकी अवस्था है। यहां भी तीसरी भूमिकामें विकास मूलरूपोंका रूपान्तर करके उन्हें परिपूर्ण और समंजस बना देता है वे परिपूर्णता और समंजसता इन मूक रूपोंकी आवृत्ति करती हैं किन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि उनका व्याघात कर रही हैं। सम्मिलनके द्वारा और प्रेमके द्वारा अनात्मा (पर) को महत्तर आत्मा माननेकी प्रवृत्ति आ जाती है, इसलिए अनात्माके विधान और आवश्यकताके प्रति आधीनताको सचेतन भावसे स्वीकार कर लिया जाता है; यह व्यक्तिगत जीवनको अपनेमें विलीन करनेवाले सामूहिक जीवनके प्रति बढते हुए अन्तर्वेगको परिपूर्ण कर देता है।

इसके साथ साथ व्यक्ति दूसरोंके जीवनको अपना मानकर उस पर अधिकार करता है, और उस सबके जीवनको अपना मानकर उस पर अधिकार करता है जो अपने आपको उस व्यक्तिको प्रदान करता है; यह व्यक्तिके अधिकार करनेके विपरीत अन्तर्वेगको परिपूर्ण कर देता है। व्यक्ति और जिस जगतमें वह रहता है उसमें परस्परताका यह संबंध तबतक अभिव्यक्त, पूर्ण या सुरक्षित नहीं हो सकता जबतक कि वही संबंध व्यक्ति एवं व्यक्तिमें और समूह एवं समूहमें भी स्थापित न हो जाय। मनुष्य दो विरोधी अन्तर्वेगोंमें सामंजस्य करनेके लिए कठिन परिश्रम करता है; एक अन्तर्वेग है आत्म दृढीकरण और स्वातंत्र्यका जिसके द्वारा वह अपने आप पर अधिकार करता है।

दूसरा अन्तर्वेग है सम्मिलन और प्रेम या भ्रातृभाव, सख्यभावका जिसमें वह अपने आपको दूसरोंको देता है; इसके साथ साथ वह समंजस साम्यावस्था, न्याय और समताके लिए भी प्रयत्न करता है जिसके द्वारा वह पूर्वोक्त दो विरोधी अन्तर्वेगोंमें समतुलन करता है, उसका यह प्रयत्न यथार्थमें प्रकृतिकी मूल समस्याके सुलझानेके लिये उसकी दिशाओंमें अनिवार्य रूपसे पूर्वनियत है; प्रकृतिकी यह समस्या स्वयं प्राणकी समस्या है; यह समस्या है दो विरोधी अन्तर्वेगोंके संघर्षमें समाधानकी; ये विरोधी अन्तर्वेग जड द्रव्यमें निहित प्राणके आधारोंमें विद्यमान है। इस समाधानके लिये प्रयत्न प्राणसे उच्चतर तत्त्व जो मन है वह करता है; केवल मन ही अभिप्रेत सामजस्यकी ओर जानेवाले पथको ढूढ सकता है, यद्यपि सामजस्य स्वयं केवल उस शक्तिमें मिल सकता है जो कि अभीतक हमसे ऊपर है।

कारण, जिन तथ्योंसे हमने प्रारंभ किया है यदि वे ठीक हैं तो मार्गके अन्तपर, स्वयं लक्ष्य पर मन केवल तभी पहुंच सकता है जब कि वह अपनेसे अतीत होकर उसमें पहुंच जाय जो उससे अतीत है, क्योंकि मन उस तत्का केवल एक निकृष्ट रूप और एक उपकरण है, यह उस तत्का उपकरण, प्रथम, इसलिए है जिससे कि वह इसके द्वारा रूप (भौतिक द्रव्य) और व्यक्तित्वमें अवतीर्ण हो सके; दूसरे, इसलिए कि जिसके द्वारा वह इनसे उस यथार्थतामें पुनरारोहण कर सके जिसे कि रूप मूर्त्तिमान करता है और व्यक्तित्व व्यक्त करता है। इसलिए केवल *सम्मिलन*, प्रेमके आदान प्रदान और अनुकूलीकरणोंसे अथवा मन और हृदयको विधानोंसे प्राणकी समस्याके पूरे समाधानकी आशा नहीं है।

पूरा समाधान प्राणकी चतुर्थ भूमिकाके द्वारा प्राप्त किया जा सकता, इस भूमिकामें बहुके सनातन ऐक्यका आत्माके द्वारा अनुभव होता है; यहां प्राणकी समस्त क्रियाओंके सचेतन आधार शरीरकृत भेद नहीं होते, न जीवन-शक्तिके रागावेश और भूख होते हैं, न मनोनिर्मित समूह और सदोष सामंजस्य और न इन सबके समुदाय होते हैं, अपितु आत्माका ऐक्य और स्वातन्त्र्य होते हैं।

(क्रमशः)

संस्कृत लोकोक्तियाँ

(ले० श्री पं० हरिदत्तजी शास्त्री, एम. ए., विद्याभास्कर)

छ

छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्।

अर्थ— दुर्जन और सज्जनोंकी मैत्री प्रातःकाल और सायंकालकी छायाके समान होती है।

प्रयोगः— रामसुग्रीवयोः सख्यं अनुदिनं सायंछायेव वर्धतेस्म, यतः छायेव०।

छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति।

अर्थ— चोटपर चोट लगा करती है।

प्रयोगः— व्रणे पुनरपि प्रहारोऽभवत्, यतः छिद्रेषु०।

छाया न मूर्छति मलोपहत प्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।

अर्थ— स्वच्छ वस्तुमें ही प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेकी शक्ति होती है।

प्रयोगः— स हि निर्मलया धिया सर्वं गृह्णाति यतः छाया०।

ज

जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत्।

अर्थ— देशके लिए एक ग्रामका त्याग कर देना चाहिए।

प्रयोगः— काशी हि० वि० विद्यालयस्य निर्माणाय ग्रामो ध्वस्तः, तदिदमुचितमेव जनपदार्थम्०।

जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ।

अर्थ— वृद्धि और विनाश जिह्वाके अधीन है।

प्रयोगः— कटुभाषी न पदोन्नतिं लभते-यतः जिह्वा०।

ज्वरेण दूनेरसेन सिताऽपि तिक्तायते नात्र मनाग् विकल्पः।

अर्थ— ज्वरसे पीडित जीभपर शक्कर भी कडवी लगती है।

प्रयोगः— पैरूप जलोऽयं मामन्यथा संभावयति, ज्वरेण०।

जलबिन्दु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।

अर्थ— बूँद बूँद पानीसे घडा भर जाता है।

प्रयोगः— श्रमं न कदापि परित्यजेत् यतो जल०।

जिह्वायां मूर्खहृदयं जिह्वातु विदुषो हृदि।

अर्थ— मूर्ख बड बड करता है और समझदार अपना भाव व्यक्त नहीं करता।

प्रयोगः— सहि मातृमुखः सर्वं हृद्गतं प्रकाशयति यतः जिह्वायाम्०।

जीवतामिह नेत्राणि मृता उन्मीलयन्ति हि।

अर्थ— जीवित प्राणियोंको मरनेवालोंसे शिक्षा लेते रहना चाहिए।

प्रयोगः— जगतो व्रजन् स संसारानित्यतामुपदिशन्निव प्रतिष्ठत सत्यमेतद् यत् जीवतामिह०।

जन्म केवलमात्मार्थं नास्माकं जगतीतले।

अर्थ— हम केवल अपना पेट भरनेके लिए ही पैदा नहीं हुए हैं।

प्रयोगः— जगति मनुष्यैः आत्मोन्नतये यतितव्यं यतः जन्म केवलम्०।

झ

झटिति पराशय वेदिनो हि विज्ञाः।

अर्थ— विद्वान् दूसरेके मनकी बात जल्दी ही जान लेते हैं।

प्रयोगः— तन्मुखमिङ्गितं च दृष्ट्वा स सर्वमबुध्यत यतः झटिति०।

त

तस्मात्किमपि नाशंसितव्यं यो बहु प्रतिजानीते।

अर्थ— जो बहुत विश्वास करता हो, उससे कुछ भी छिपाना न चाहिए। जो बहुत मानता हो, उसपर सन्देह नहीं करना चाहिए।

प्रयोगः— मित्रमात्मनः व्यतिरिक्तं न मन्येत। अतः परं तस्मात् किमपि नाशंसितव्यं यो बहु प्रतिजानीते।

तावत्परिहर कलहं परिहर्तुं शक्यते यावत्।

अर्थ— जहाँतक हो सके लडाई झगडेमें न फँसो।

प्रयोगः— उत्तरप्रदेशीय प्रधानामात्यपदस्यार्थं मतदानसाम्मुख्यमकृत्वा राजर्षिः पुरुषोत्तमदासः " तावत् परिहर

कलहं परिहर्तुं शक्यते यावत् " इत्युक्तिमाचरितार्थं साधु कृतवान् ।

तिरस्कारः सोढुं योग्यश्चेत्तिरस्कृतो भव ।

अर्थ— यदि तिरस्कार सहने योग्य है तो सहन करो ।

प्रयोगः— राजनीतिकोत्कर्षोपलब्ध्यै महत्त्वाकाङ्क्षिण-कृते तिरस्कार आदरणीय एव अतएव तेन स्मरणीयम् तिरकारः सोढु योग्यश्चेत्तिरस्कृतो भव ।

तिष्ठति य एव निकटे हृदयस्यांशः ददाति तस्मै मूर्ख. ।

अर्थ— सदा समीप बैठनेवालेको जो अपना गुप्तभेद बताता है- वह निरा मूर्ख है ।

प्रयोगः— शंकर. रामचन्द्रस्य द्वारि नित्यं तिष्ठतिस्म, तस्यैव सम्मुखे रामचन्द्रः स्वद्रव्यराशि विषये वार्तालापं करोतिस्म । एकस्मिन् दिने शंकरेण रामचन्द्रस्य सर्वमपि धनमपहृतम् सत्यमुक्तम्-तिष्ठति य एव निकटे हृदयांशः ददाति तस्मै मूर्खः ।

तथोपयोगः स्वधनस्य कार्यो हानिर्न कस्यापि यथाऽभ्युदेति ।

अर्थ— अपने धनका उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि जिससे किसी दूसरेका हानि न होने पावे ।

प्रयोगः— रामकृष्णः स्वधनबलेन ग्रामस्य सर्वामपि पशुचारणभूमि क्रीतवान् कृषकेभ्यः परां पीडां दत्तवान्, तेन विस्मृतं यत् तथोपयोगः स्वधनस्य कार्यो हानिर्न कस्यापि यथाऽभ्युदेति ।

तथैव सततं नार्यश्चाटुश्लाघा प्रिया भुवि ।

अर्थ— संसारमें स्त्रियाँ तो सदा ही झूठी प्रशंसा चाहने-वाली रही है ।

प्रयोगः—अशुन्दस्यापि स्वसंस्कृतस्य प्रशंसां चाटुकारेभ्यः आकर्ण्य हर्षातिरेकयुक्तां मालतीं दृष्ट्वा कोऽपि सुजनः प्राह तथैव सततं नार्यश्चाटुश्लाघाप्रिया भुवि ।

द

दोष वर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ।

अर्थ— दोषरहित कार्य दुर्लभ होते हैं ।

प्रयोगः— ससारे किमपि निष्कलङ्कमास्ति । दोष-वर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ।

देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदं न वाञ्छति ।

अर्थ— प्राप्त शरीरको त्यागकर कोई इन्द्रके पदको भी नहीं चाहता ।

प्रयोगः— स्वशरीरं प्रत्येकं लोको रक्षितुमिच्छति । देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदन्न वाञ्छति ।

दरिद्रेण समं मैत्रीं बन्धुतां कोऽपि नेच्छति ।

अर्थ— कोई भी दरिद्रके साथ मैत्री अथवा बन्धुत्व नहीं चाहता ।

प्रयोगः— सर्वे धनिकेन साकमेव मित्रतां विदधति । दरिद्रेण सम मैत्रीं बन्धुतां कोऽपि नेच्छति ।

देहली दीपकः ।

अर्थ— बाहर भीतर दोनों ओर प्रकाश फैलानेवाला ।

प्रयोगः— पक्षद्वये प्रकाशको देहली दीपकः ।

दूरतः पर्वता. रम्या ।

अर्थ— दूरके ढोल सुहावने ।

प्रयोगः— अश्रुतपूर्वेऽदृष्टपूर्वे च सर्व एव विश्वसिति यतो दूरतः पर्वताः रम्याः ।

दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।

अर्थ— गरीबकी जो सबकी भाभी ।

प्रयोगः— दारिद्र्येण सर्वेऽपि गुणा' लुप्यन्ते सत्यमेव दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।

देवमन्दिरमुपस्थातारः सर्वे न साधवः ।

अर्थ— देव मन्दिरमें जानेवाले सभी भक्त नहीं होते हैं ।

प्रयोगः- देवमन्दिरात् सा केनचिदपहृता, देवमन्दिर० ।

दुराचारपरा नारी सर्वदोषास्पदं परम् ।

अर्थ— आचारहीन स्त्री सारे दोषोंकी खान है ।

प्रयोगः— प्रत्यहं यमुनां स्नात्यपि कमला न विरमति पुंश्चलीत्वात् ततश्च व्यर्थमेवं तस्याः स्नानं यत. दुराचार परा० ।

दुःशिक्षा अनायासेनाधिगन्तुं शक्या ।

अर्थ— बुरी आदत बिना अभ्यासके आ जाती है ।

प्रयोगः— असत्यभाषणं बालाः क्षिप्रं शिक्षन्ते यतः दु.शिक्षा० ।

दुर्जनो यदा कृत्रिमां साधुतां प्रदर्शयति तदा स दुष्टतरो भवति ।

अर्थ— दुष्ट व्यक्ति जब बनावटी सज्जनता दिखलाता है तब वह अतीव भयंकर हो जाता है—

प्रयोगः— रावणः सीताहरणवेलायां संन्यासिरूप-धरोऽपि भयद आसीत् सीतायै यतः दुर्जनो० ।

द्वारे विघटिते लोभो भवत्येव मुनेरपि ।

अर्थ— बॉक्सका मुँह खुला रहे तो मुनिका भी मन चल उठता है ।

प्रयोगः— कृते भोजने स साधुरपि तस्य सुवर्णमालामपाहरत् द्वारं विघटिते० ।

दुष्कर्म शिक्ष्यते तेन न किञ्चिद्यो ऽनुतिष्ठति ।

अर्थ— निकम्मा मनुष्य दुष्ट कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है ।

प्रयोगः— स हि परिभ्रमति प्रतोलीषु यतः दुष्कर्म० ।

दुर्जनानां सतां कार्याज्जायते सर्वदा भयम् ।

अर्थ— दुर्जनोंको सज्जनोंके कामसे सदा भय लगता रहता है ।

प्रयोगः— नेहरू यदा लोकान् परिभ्रमति तदा यवना बिभ्यति, दुर्जनानाम्० ।

दुःसङ्गादेकको वरम् ।

अर्थ— बुरे साथीसे अकेला ही भला ।

प्रयोगः—सुरेशाय एकान्तवासः रोचते, यतः दुःसङ्गाद् ।

दृढं कुरुत हृदयं दुरारोहं पर्वतं प्रति ।

अर्थ— कठोरसे कठोर कामके लिये सङ्कल्प दृढ बनालो ।

प्रयोगः— दृढः संकल्पः कठोराण्यपि साधयति कर्माणि, यतः दृढं० ।

दुर्बल इति नावज्ञा सिंहस्याप्यक्षि दशति मशकोहि ।

अर्थ— कमजोर समझकर किसीका तिरस्कार न करो, क्योंकि मच्छर भी शेरकी आँखपर काट लेता है ।

प्रयोगः— स हि स्वक्षुद्रसेवकान् अपि आद्रियते, यतः दुर्बल इति० ।

दुष्टं दुष्टस्य कार्याणि च द्रष्टुमातिरूपमस्त्युपनेत्रम् ।

अर्थ— दुष्टों और दुष्टोंके कार्योंको देखनेके लिये बुद्धि रूपी चश्मा चढाना होगा ।

प्रयोगः— सर्वोऽपि धीमान् दुष्टेशां चेष्टितानि जानीते यतः दुष्टम्० ।

दुर्मेधसश्छिन्नसंशयाः कर्तुमशक्याः ।

अर्थ— दुर्बुद्ध कुतर्कोंका समाधान कोई नहीं कर सकता ।

प्रयोगः— तं प्रयत्नेन समादधानोऽपि न सफलतां अलभत् यतः दुर्मेधसः० ।

दृढसंकल्पो विधेः प्रियः ।

अर्थ— दृढ विचारवाले व्यक्तिकी परमात्मा सहायता करता है ।

प्रयोगः— राम. सेतुं सागरे बबन्ध यतः दृढ० ।

दैवमेव प्रजानाति कीदृग्भार्या भविष्यति ।

अर्थ— विवाहित स्त्री कैसे शील स्वभाववाली है यह भगवान् ही जाने । (भार्या–भाग्य, और धन मनुष्य नहीं जान सकता ।)

प्रयोगः— रूपवत्यपि सुशीला अति कटुभाषिणी प्रत्यहं खेदयति भर्तारं दैवमेव० ।

दुःखमत्यशनाद्रात्रौ सुनिद्रः स्वल्पभोजनः ।

अर्थ— अधिक खानेसे नींद अच्छी नहीं आती कम खानेवाला सुखसे सोता है ।

प्रयोगः— देवदत्तः समये स्वपिति जागर्ति च यतः दुःखम्० ।

द्विगुणं शीघ्रदानं स्यात् ।

अर्थ— मौकेपर दिया गया दान दूना फल देता है ।

प्रयोगः— तेन तदैव दशरूप्यकाणि दत्तानि यतः द्विगुणम्० ।

दण्डयन्ति नराः कार्यमीशः पापस्य चिन्तनम् ।

अर्थ— मनुष्य पाप कर्मोंका दण्ड दे सकता है पर भगवान् तो पाप वासनाका भी दण्ड देता है ।

प्रयोगः— दुर्विचारमपि मुनयः पापपक्षे गणयन्ति यतः दण्डयन्ति० ।

दुर्गभित्तिपातेऽन्तिमाघातोऽल्पेन मूषकेणापि क्रियते ।

अर्थ— रक्षक न होनेपर चूहे भी शेर हो जाते हैं ।

प्रयोगः— दीनं धनहीनं च तं सर्वे पीडयन्ति, दुर्ग० ।

दैन्यव्यवहितो गुणः शनैरुद गच्छति ।

अर्थ— गरीबीमें छिपे गुण कभी न कभी चमक ही उठते हैं ।

प्रयोगः— दमयन्ती वने भ्रमन्ती शालीनतां न जहौ–दैन्य० ।

दुःखात्तदुन्नतिर्यस्य गुणाः दैन्येन संवृताः ।

अर्थ— गरीबीमें मनुष्य कठिनतासे विकास पाता है ।

प्रयोगः— शिवाजी दारिद्र्येण शनैः शनैः काठिनतया सैन्यसंग्रहं चक्रे यतः दुःखा० ।

देशस्य, न निसर्गस्य परिवृत्तिः प्रवासतः ।

अर्थ— परदेशजानेसे देश तो बदल जाता है पर-स्वभाव नहीं ।

प्रयोगः— साचिव्य धुरं वहन्नपि दिल्लीमधिवसन्नपि जगजीवनरामः स्वभावं नात्याक्षीत् ।

दोषः सर्वेषु विश्वासो न विश्वासोऽथवा क्वचित् ।

अर्थ— प्रत्येकका विश्वास करना या किसीका भी विश्वास न करना दोनों ही दोष हैं ।

प्रयोगः— देवीचरणो महाविद्यालयधनमचोरयत् सत्यं दोषः सर्वेषु० ।

दण्डस्यानुपयोगेन बालो दुर्ललितो भवेत् ।

अर्थ— लाडला बच्चा नटखट बन जाता है ।

प्रयोगः— इन्दुदेवी रामलालिता पठनात् पराङ्मुखी अभूत् सत्यम् दण्डस्य० ।

दुष्प्रयत्नेषु साफल्यं दुष्प्रवृत्तिं प्रवर्धयेत् ।

अर्थ— बुरे कामोंमें सफलता मिलनेपर दुष्कर्मोंकी ओर रुचि बढ जाती है ।

प्रयोगः— वाष्पयाने विना शुल्कपत्रं एकधा निगृहीतो नाभूत् ततश्चासौ भूयो भूयस्तथैव कुरुतेस्म यतः दुष्प्रयत्नेषु० ।

दैवाधीनं त्यजेद्भावि ।

अर्थ— भविष्यकी चिन्ता भगवान्‌पर छोड दे ।

प्रयोगः— सोऽध्ययने दत्तचित्तः तत्फलं नाचिन्तयत् यतः दैवाधीनम्० ।

दरिद्रो भोजनार्थी स्यात् क्षुधार्थी धनिको जनः ।

अर्थ— गरीबको भूख सताती है तो धनीको भूख नहीं लगती ।

प्रयोगः— हैदराबादीयो भूपः (नबाबः) सर्वदा रुग्णः क्षुधावर्जितश्च तिष्ठति, अतः सत्यमेतद् यत् दरिद्रः० ।

दरिद्रता धीरतया विराजते ।

अर्थ— दरिद्रीको सहनशील होना चाहिए ।

प्रयोगः— कम्बल शून्योऽसौ हेमन्ते सर्वं सहते कष्टम् यतः दरिद्रता० ।

दुर्बलस्य बलं राजा ।

अर्थ— दुर्बलका रक्षक राजा है ।

प्रयोगः— यवनाः हिन्दुभ्यो बिभ्यतोऽपि कॉंग्रेसराज्ये निर्भयं प्रचरन्ति सत्यम्, दुर्बलस्य० ।

दुर्लभं भारतेजन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम् ।

अर्थ— भारतमें जन्म दुर्लभ है उसपर भी मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है ।

प्रयोगः— मोक्षमूलरः मरणसमये भारत भुवि जन्म चकमे दुर्लभम्० ।

द्रव्येण सर्वे वशाः ।

अर्थ— पैसेके सब वशमें आजाते हैं ।

प्रयोगः— स्वस्त्रियं हत्वापि स द्रव्यबलेन अभियोगाद् वियुक्तः । यतः द्रव्येण० ।

दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि ।

अर्थ— विद्वान् भी विषय विकारोंको कठिनतासे जीत सकता है ।

प्रयोगः— नीलकण्ठो विद्वानपि स्वे स्तस्त्रियं अचीकमत् यतः दुर्जया० ।

दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः ।

अर्थ— सज्जनोंका तिरस्कार विनाशका हेतु है ।

प्रयोगः— नहुषः पदास्पृशन् अष्टावक्रं शप्तः अजगरतां प्राप्तवान् यतः दिशत्यपायम्० ।

द्रुतं क्वापि न विश्वासः प्रज्ञामूलमुदीरितम् ।

अर्थ— झटपट किसीके भी ऊपर विश्वास कर लेना बुद्धिमानी नहीं है ।

प्रयोगः—एको भृत्यः स च देव सरलया स्वगृहे धृतः स च वस्त्राणि पात्राणि चादाय पलायितः सेयं लोकव्यवहार शून्यता द्रुतं० ।

दुर्वार्ताः शीघ्रगालोके । सद्वार्तास्तु विलम्बगाः ।

अर्थ— बुरी बातकी अफवाह संसारमें बडी जल्दी फैलती है । अच्छी बातोंका प्रचार देरमें होता है ।

प्रयोगः— तेन परीक्षायां सुत उत्तीर्णतां नीत इति प्रवादः प्रथितः, परं तेन स्वपुत्री अनुकुर्वती परीक्षा भवनाद् बहिष्कृतेति न कोऽपि जानीते, सत्यं दुर्वार्ताः ।

दुःसमयश्चिरेण याप्यते ।

अर्थ— कष्टकी रात बडी लम्बी होती है ।

प्रयोगः— ज्वरार्तः स रात्रिन्दिवं क्रोशति, सत्यं दुःसमयः० ।

दृढस्य प्रत्ययाधीना न जनोक्ति विचालिताः।

अर्थ— यदि अपने ऊपर दृढ विश्वास हो तो लोगोंकी बातें सुनकर विचलित नहीं हो जाना चाहिए।

प्रयोगः— ये मनुष्याः कर्णयो नावदधति ते दृढाः कथ्यन्ते, त एव च दृढस्य०।

ध

धेनोश्शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते।

अर्थ— जिसे गायकी खोज मालूम रहती है वही उसका दूध पीता है।

प्रयोग.—स हि सुखमेधते यो यं परिचिनोति, धेनो०।

धावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

अर्थ— प्रमादसे दौडनेवालेका कहीं न कहीं गिरना स्वाभाविक है।

प्रयोगः— तस्याः पिच्छिले पथि सुशीलायाः पतनं वीक्ष्यापापिं कोऽहसत् धावतः०।

धनुर्मा क्राक्षीः यावच्छरो न संहितः।

अर्थ— अगर बाण नहीं चढाया है तो धनुष् क्यों तान रहे हो।

प्रयोगः— धावनात् पूर्वं परिकरं बधान, धनुर्मा०।

धैर्येण जयाविपद्—

अर्थ— धैर्यसे कष्टोंको पार कर लो।

प्रयोगः— अनाथः पितरि उपरते रोदितिस्म, परं धैर्येण०।

धूलिं धमति यः प्राणी कलुषं कुरुतेऽक्षिणी।

अर्थ— जो धूल उडाता है वह अपनी आँखें भी गन्दी करता है—

प्रयोगः— गालि प्रदानेन जिह्वा मलिना भवति, धूलिं।

धनोपेक्षा यथाकालं प्रायो लाभे महान्भवेत्।

अर्थ— व्यापारमें लाभ होनेपर धनकी लापरवाही होने लगती है।

प्रयोगः— अनयति प्रमादमर्थागमः, धनोपेक्षा०।

धर्मरक्षाऽऽत्मनो रक्षा दुष्प्रत्येयमिदं जनैः।

अर्थ— "धर्मकी रक्षा करना अपनी ही रक्षा करना है" यह लोग विश्वास नहीं करते।

प्रयोग — धर्महेतोः बन्दावैरागी प्राणानुत्ससर्ज, परमधन्येजना धर्मं तिरस्कुर्वन्ति तथाच धर्मरक्षा०।

धैर्यं कटु भवेत्किन्तु, तस्यास्ति मधुरं फलम्।

अर्थ— धैर्य करनेमें कितना ही कष्ट क्यों न हो पर उसका फल मीठा होता है।

प्रयोगः— विपत्परम्परामसौ सोढवान् जितवान् च अन्ते, धैर्यं कटु०।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्—

अर्थ— धन और प्राण परोपकारमें लगा दे।

प्रयोग·— मोतीलाल नेहरू. धनं जीवितं च देशस्यकृते अत्याक्षीत् सत्यमेतत्, धनानि०।

धर्मक्षयकर क्रोधः।

अर्थ— क्रोध धर्मका नाश करता है।

प्रयोगः— यतयो न कुप्यन्ति यतः धर्म०।

धिक्कलत्रमपुत्रम्।

अर्थ— पुत्रहीन स्त्रीको धिक्कार है।

प्रयोगः— सा पुत्रविहीना प्राणान् जहौ-धिक्कलत्रम्०।

धिग् जीवितं चोद्यमवर्जितस्य।

अर्थ— उद्यमहीन मनुष्योंके जीवनको धिक्कार है।

प्रयोगः— क्षुधापीडितोऽसौ याचमान· परिभ्रमति, सत्यम् धिक्।

सोम

[लेखक– श्री वासुदेव शरण, अग्रवाल, नई देहली]

●

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।

ऋ० ५।४४।१४

जागरूक अर्थात् प्रज्ञावान् पुरुषके साथ ही सोम सख्य या मैत्रीकी इच्छा करता है। वेदोंमें सोम शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस शब्दके कितने ही अर्थ ब्राह्मणकारोंमें दिए गये हैं, यथा— रेतो वै सोम (कौ. श तै.), अन्नं सोमः (श.), सोमो प्रजापतिः, प्राणो वै सोमः (तां), हविर्वै देवानां सोमः (श.), यशो वै सोमः (श), क्षत्रं वै सोमः (कौ. ऐ), वर्चः सोमः (श.), रसः सोमः (श.), शुक्रः सोमः (तां.), सोमो वै ब्राह्मणः (तां.), ब्राह्मणानां स (सोमः), म क्षः (ऐ.)।

अग्नीषोमाख्य नियम सृष्टि-व्यापक विराट् द्वन्द्व है जिससे समस्त जीवन नियन्त्रित होता है। शतपथमें कहा है— 'यद्धा आर्द्रं यज्ञस्य तत्सोम्यम्, यच्छुष्कं तदाग्नेयम्।' अग्नीषोम ही सृष्टिकी वैज्ञानिक व्याख्या है। 'अग्नीषोमात्मकं जगत्' इस सूत्रमें सब कुछ अन्तर्निहित है। मनुष्य एक अग्निषोमीय पशु है। समस्त यज्ञोंमें संस्कारार्थ इसीकी अपेक्षा है। परन्तु यहां आज हम सोमके एक आध्यात्मिक अर्थकी ओर विशेष ध्यान दिलाना चाहते हैं। ऊपर लिखे हुए ब्राह्मण वचनमें अत्यन्त स्पष्टतासे सोमका अर्थ वीर्य या रेत किया गया है। यज्ञमें हिरण्य देकर सोम लिया जाता है। इसका अर्थ शतपथमें इस प्रकार है– 'शुक्रं ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोम हिरण्येन। (श० ३।३।३।६) हिरण्य भी रेतकी ही संज्ञा है। शुक्रसे शुक्रकी प्राप्ति होती है। यही यज्ञके द्वारा यज्ञ करना है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ब्रह्मचर्य आश्रममें रेतके संचयसे ही वीर्य, प्रज्ञा, तेज आदिकी संप्राप्ति होती है। प्राणकी आहुतिसे प्राण पुष्ट होते हैं। शरीरस्थ शुक्र जब शरीरमें ही पचाया जाता है तभी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक निर्मलता, प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य शरीरमें वीर्य या रेत सबसे मूल्यवान् पदार्थ है। यह सोम जिन नसनाडियोंमें व्याप्त रहता है वे ही सोमवल्ली है। इनको ही केन्द्रीय नाडीजाल कहते हैं। यह नाडीजाल मनोमय वाङ्मय प्राणमय पुरुषकी प्रतिष्ठा है। मस्तिष्क इसका ही एक भाग है। मस्तिष्ककी संज्ञा ही स्वर्ग है।

अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
अस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
(अथर्व० १०।२।३१)

आठ चक्रों और नौ द्वारोंसे युक्त यह शरीर देवोंकी नगरी अयोध्या है; इसीमें ज्योतिसे भरा हुआ सोनेका कोष है जो स्वर्ग है। सोनेका यह पात्र या खजानेसे भरा हुआ सन्दूक मस्तिष्क ही है। यही नीचे मुंह और ऊपर पेंदीवाला करककुल, चम्मू या घट है जिसके किनारोंपर सप्तऋषि [सप्तशीर्षण्य प्राण चक्षु, कर्ण, नासा, मुख] स्थित हैं—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न तस्मिन्नासत ऋषय सप्तसाकम्। (अथर्व. १० ८।९)

यह शरीर सोम कूटनेकी ग्रावा है—

बृहद्ग्रावासि [illegible] भवद्यच्छरीरम्। (अथर्व० ९।४।५)

कूटने, पीसने, छाननेके बाद निर्मल सोमसे भरा हुआ शीर्षरूपी कलश इस शरीरमें रहता है—

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि। (अथर्व० ९।४।६)

अनन्त प्रकारसे पुष्ट होनेवाला जो प्राणतत्व है उसे अध्यात्म परिभाषामें ऋषभ कहा गया है। उस प्राणरूपी ऋषभका रेत ही इस शरीररूपी यज्ञमें पकनेवाला घृताज्य है। यही अध्यात्म यज्ञ है—

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः। (अथर्व० ९।४।७)

सोम इस शिरकी रक्षा करता है।

अंशु रक्षते शिरः। (ऋ० ९।६८।४) और भी—
सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत्।
मधुमाँ अस्तु वायवे। (ऋ. ९।६३।३)

मस्तिष्कका प्रतिनिधि ही यज्ञमें द्रोण कलश है जिसमें

सोम छानकर भरा जाता है। (वृधानः कलशे रसं। ऋ० ९।६३।१३) इसीमेंसे हम ऐन्द्रवायव (वाक्+प्राण), मैत्रावरुण (चक्षु मन) और आश्विन (श्रोत्र+आत्मा) इन इन्द्रियरूपी पात्रों या ग्रहोंमें इस सोमको भरकर पी रहे हैं। सोम इन्द्रियोंका रस है (आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्। ऋ० ९।४७।३)

ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण और आश्विन ये सब प्राणके ही नामान्तर हैं क्योंकि प्राण ही दो देवताओंवाला (द्विदेवत्य) और एक पात्रमें भरा हुआ सोम है। अथवा प्राण ही दो पात्रोंमें भरा हुआ किन्तु एक नामवाला है।

(प्राणा वै द्विदेवत्याः एक पात्रा गृह्यन्ते तस्मात्प्राणा एकनामानो द्विपात्रा हूयन्ते तस्मात्प्राण द्वन्द्वम्। ऐ० २।२७)

अयं सरांसि धावति। ९।५४।२

यह सोम छाना हुआ सरोवरोंमें भर जाता है। मस्तिष्कमें जो तीन प्रधान चमू या वापियां (Vontriclos) हैं वे ही यज्ञके कलश हैं—

इदं तदद्य नाक त्रिषु पात्रेषु रक्षति। ऋ.१०।१०।१७

इनको ही आधुनिक शरीर विज्ञानकी परिभाषामें (सेरीब्रल वेन्ट्रिकिल्स) कहते हैं। इनकी संख्या चार भी मानी जाती है। (रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः। ९।३३।६)

पवमान सोम स्वर्गसे और अन्तरिक्षसे पृथिवीके भूक्षोंपर आता है। (पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधिसानवि, ९।६३।२७) ऋ० ९।६४।६ में कहा है कि दिव्य पार्थिव और आन्तरिक्ष सोमको पवित्र करो। फिर, सोम द्युलोकका केतु या प्रकाश है। (केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वारूपाभ्यर्षसि। ऋ० ९।६४।८) सोम द्युलोकका अमृत है; वह द्युलोकका शिशु है—

दिवः पीयूषं सोमं। (९।५१।२)

दिवः शिशुं। (९।३३।५)

सोमको उदीची दिशाका स्वामी कहा है। सोम इन्द्रियोंका रस है। सोमके त्रिविध स्थानको यों समझना चाहिए।

नर्वस सिस्टमके तीन भाग हैं (त्रिभिः धामभिः पुनीहि ९।६७।२६)

द्युलोक— सेरीब्रम (cerebrum) सर्वोच्च मस्तिष्क,

अन्तरिक्ष— मेडूला ऑब्लॉंगाटा (medulla oblongata) मध्य मस्तिष्क,

पृथ्वी— स्पाइनल कालम (spinal columm) मेरुदण्ड या केन्द्रीय नाडीजाल, सोमको त्रिपृष्ठ कहा जाता है। (त्रिपृष्ठो वृषा, ऋ० ९।७१।७) पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यो— ये तीन स्थान ही सोमके तीन पृष्ठ हैं। सुदुताद गौएं अर्थात् इन्द्रियां अपने दुग्ध देनेवाले ऊधस्को मूर्धा या मस्तिष्कमें मिलाकर दूधकी वर्षा करती हैं। (ऋ० ९।७१।४) इन्द्रियोंका संयम करनेसे मस्तिष्कके सोममें

आपकी प्रचण्ड शक्ति

आप दिनभरमें कितना प्रचण्ड उद्योग करते हैं इसकी कुछ कल्पना है? जरा इस आंकडेपर नजर डालिये—

- ▲ २४ घंटोंमें आप २१००० बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं,
- ▲ अपने फुफ्फुसमें ४३८ घनफुट हवा भरते हैं,
- ▲ आपका हृदय १०६५६० बार धडकता है,
- ▲ आपका रक्त १६ करोड ८० लाख मीलकी सैर कर डालता है,
- ▲ आप ४५० टन श्रमशक्तिका निर्माण करते हैं,
- ▲ ७५० बार मुख्य स्नायुयोंको हिलाते हैं,
- ▲ तीन सेर अन्न और तीन द्रव पदार्थ हजम कर लेते हैं,
- ▲ २॥ सेर पसीना शरीरसे बाहर निकालते हैं,
- ▲ ४८०० शब्द बोलते हैं और आपके केश ०.०००४७ इंच और आपके नाखून ०.०१७१४ इंच बढ जाते हैं।

इन्द्रियरूपी गौओंका दुग्ध या तेज मिलता रहता है। कहा है—

दिवस्पृष्ठे तव शुक्रास अर्चयः। (ऋ० ९।६६।५)

द्युलोकके स्थानमें सोमकी प्रकाशमान आर्चियां हैं। यज्ञका आत्मा सोम है। (ऋ० यज्ञस्य आत्मा)। सोम प्राणापानरूपी अद्रि या ग्रावाओंसे अभिषुत होता है। (सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ९।३४।३; अद्रिभिः सुष्वाणः ९।६७।३; ग्रावणा तुन्नः ९।६७।२८) दश प्राण ही सोमके दश अंशु हैं। कहा है कि सप्तसिन्धु सोमके ही अनुशासनको मानते हैं। (सप्त सिन्धवः तव प्रशिषं सिस्रते

९।६६।६) शरीरमें सप्त प्राणधाराएं सप्तसिन्धु हैं। एक मंत्रमें सोमको पांचजन्य पुरोहित कहा है—

अग्निः पवमान. पांचजन्यः पुरोहित ।
तमीमहे महागयम् ।

इन्द्रियां ही पचजन हैं।

सोम इस शरीररूपी रथ या शकटपर लादा जाता है॰

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युंजन्ति यातवे ।
ऋषीणां सप्त धीतिभिः । (ऋ० ९।६२।१७)

तीन पृष्ठवाला रथ यह शरीर है। सप्त ऋषियोंकी धी या स्तुतिसे यह जुता हुआ है। सोम शरीररूपी ऋतके सदनमें सुत होता है। (सुता ऋतस्य सादने। ९१।१२।१) इसीसे ऋतम्भरा प्रज्ञा होती है।

एक स्थानपर सोमके अधिश्रयण या परिपाकका वर्णन है—

सोमो गौरी अधिश्रित । (९।१२।३)

कन्याकी संज्ञा गौरी है। विवाहसे पूर्व कौमार अवस्थामें सोमका गौरी कन्याके शरीरमें प्रकृति द्वारा अधिश्रयण या पचन होता है। सोम इस शरीर गुहामें संचित है जहां द्युलोक या मस्तिष्कमें ज्ञानी लोग उसे विवेककी आंखसे देख पाते हैं—

अध्वर्युभिः गुहाहितं दिवस्पदं सुरः पश्यति चक्षसा । ऋ० ९।१०।९

अप्रचेत अज्ञानी उसकी अवहेलना करते हैं, जो ज्ञानी और प्रचेता है वे सोमकी उत्पत्ति, उसके संचय, उसके परिपाक एवं उसकी अनेक रहस्यमयी शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओंको देखते हैं—

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति ।
जहाति अप्रचेतसः । (९।६४।२०)

ऋतकी हिरण्मयी योनि मस्तिष्क है। इसे ही अथर्ववेदमें हिरण्मयका कोष एवं स्वर्ग कहा गया है। यहां सोम जब प्रतिष्ठित होता है, तब अप्रचेत या अज्ञान छूट जाता है।

अभि वेना अनूषते यक्षन्ति प्रचेतसः ।
मज्जन्ति अविचेतसः । (९।६४।२१)

जो आत्मदर्शी हैं वे सोमका गान गाते हैं, जो विवेकशील हैं वे सोम यजन करते हैं; जो मूर्ख हैं वे सोमके क्षयसे डूबते और नीचे गिरते हैं।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तम ।
ऋतस्य योनिमासदम् । (९।६४।२२)

मरुत् संज्ञक प्राणोंके मध्यमें समिद्ध होनेवाला जो मुख्य प्राण इन्द्र है, उसके लिये हे मधुमान् सोम, तुम अर्पित हो। शरीरका जो मधुभाग है उसको संचित रखनेवाले मधुमत्तम रस तुम्ही हो। ऋतकी योनि मस्तिष्क है उसमें सोमका स्थान है।

ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिव कवि ।
पवस्व सूर्यो दृशे । (ऋ० ९।६४।३०)

क्रान्तदर्शी सोम मस्तिष्क या शीर्षरूपी द्युलोक (स्वर्ग) से स्वस्तिभावके लिये प्रवाहित होता है। सूर्यके समान तेजस्वी सोमका हम दर्शन करें।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय । (ऋ० ९।६३।१)

हे सोम, अपरिमित वीर्य और रयिको हमारे शरीरोंमें पवित्र करो जिससे हम सुयशस्वी बनें। सोम सिन्धु मातृक है (सिन्धु मातर ९।६१।७), अर्थात् नदीरूप नाडियोंसे सोमरसका क्षरण होता है। सोमको प्रत्न पय (दुहान प्रत्नमित्पय ९।४२।४) या सनातन रस कहा गया है। सोम ही शरीररूपी यज्ञमें प्राचीनतम रस है। सोम ही परम अमृत है। सोम ही रेत, प्राण, वर्च, भ्राज, हिरण्य, शुक्र और चान्द्रमस पीयूष है। यह सोम प्राणापानरूपी दो ग्रावाओंसे अभिषुत होकर शिरः कपालोंके मध्यमें सम्भृत होता है। इसको पान करनेवाला इन्द्र प्राणोंका भी प्राण आत्मा है। सोमका अभिषव जन्मसे ही होने लगता है, परन्तु हर समयका सोम पृथक् पृथक् है। ऊर्ध्वरेता पुरुषका सोम उत्तरायण मार्गसे देवलोकका सिंचन करता है। शीर्ष ही वह द्युलोक या देवलोक स्वर्ग है। शीर्षमें ही मस्तिष्क प्रतिष्ठित है। वैदिक परिभाषामें मस्तिष्क ही सोम है—

सोमो राजा मस्तिष्कः । (अथर्व. ९।७।२)

इसी दृष्टिसे सोम ब्राह्मणोंका राजा कहा गया है। जो प्रज्ञाके लिये जीवित रहता है वही ब्राह्मण है!!

भारतके पूर्वी क्षेत्रोंमें

ईसाई प्रचारकी तीव्रता और प्रकार

(लेखक : श्री ओ३म् प्रकाश पुरुषार्थी, प्रधान सेनापति सार्व० आर्य वीर दल)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाके निर्देशानुसार मैंने १८ जून ५५ से लगाकर पहिली अगस्त तक बिहार, उड़ीसा, कलकत्ता, आसाम, मनीपुर स्टेट तथा नागा प्रदेशके पर्वतीय क्षेत्रोंमें ईसाई प्रचारकी स्थितिका निरीक्षण किया। स्थितिका सही ज्ञान प्राप्त करनेके निमित्त वर्षादि विपरीत परिस्थितियों तथा नागा आदिके आक्रमणका भय होते हुये भी मैं उन स्थानोंपर गया कि जहां पैदल जानेके अतिरिक्त अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं था। दौरेके समय नागा प्रदेशमें एक अज्ञात व्यक्तिने मेरे ऊपर आक्रमण भी किया, परन्तु प्रभुकी कृपासे बच गया अन्यथा वहांसे अन्धा ही होकर लौटता।

दौरेसे पूर्व ईसाईयोंकी प्रचारसम्बन्धी कुछ बाते मुझे समाचार पत्रों, पुस्तकों तथा विशेष सूत्रों द्वारा प्राप्त हो चुकी थी और इसी आधारपर मैंने एक छोटीसी पुस्तिका "भारतमें भयकर ईसाई षड्यन्त्र" लिखी थी, परन्तु दौरेकी समाप्तिपर मैं अब बलपूर्वक कह सकता हूं कि मेरा वह ज्ञान आंकड़ोंकी दृष्टिसे भले ही एक रेखाचित्र हो, परन्तु वस्तुस्थितिसे कोसों दूर है। पहिले मैं आर्यसमाजकी सस्थाओं और इसके विशाल भवनोंपर बड़ा अभिमान किया करता था और लाहौरका भूतपूर्व आर्यसमाजी गढ मेरे अभिमानका एक आधार था, परन्तु रांची, कुलेंगा, शिलांग, उखरूल, क्यांगपोकपी, एजल आदि नगरोंमें मीलों लम्बे क्षेत्रोंमें स्थित भिन्न भिन्न ईसाई मिशनोंके विशाल भवनोंको देखकर मैं अवाक् रह गया और मेरा वह समस्त अभिमान चूर चूर हो गया। लाखों नहीं करोड़ों रुपयेकी गगनचुम्बी इमारतें वहां जगलोंमें अपनी विजय पताका फहरा रही हैं।

उदाहरणार्थ अकेले शिलांगमें ईसाइयोंके डानबस्को ट्रेनिंग स्कूल, लड़के-लड़कियोंके चार कालेज तथा छ अस्पताल ट्रेनिंग स्कूलमें रंगाई, छपाई, बढ़ई, लुहार, पेन्टिंग, दर्जी, ढलाई, जिल्द साजी आदि सभी शिल्पकलाओंके शिक्षणका प्रबन्ध है और सबके लिये अलग अलग भवन हैं। ये समस्त संस्थायें शिलांगके मध्यमें कमसे कम दस वर्ग मीलमें होंगी।

विदेशी प्रचारक

भारतीय इतिहासमें पढा करते है कि एक समय भारतके धर्मप्रचारक विदेशोंमें गये और वहां वैदिक धर्मका प्रचार किया, परन्तु इसके सर्वथा विपरीत विदेशोंके हजारों धर्मप्रचारक बड़ी ही सफलता, योग्यता तथा धैर्यके साथ आज भारतके इन दुर्गम सघन जङ्गलोंके सर्वथा प्रतिकूल वातावरण में बड़ी ही प्रसन्नताके साथ सेवा और ईसाई धर्मका प्रचार कर रहे हैं। विधर्मी होनेके कारण भले ही हम उनके घृणा तथा द्वेष करें, परन्तु उनका त्याग एवं तप सराहनीय है। हृदयमें जबतक अपने धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम न हो तबतक केवल आर्थिक प्रलोभनपर इतना त्याग एवं तपस्या कदापि नहीं की जा सकती है।

उदाहरणार्थ थोड़ी थोड़ी उम्रके विदेशी नवयुवक नवयुवती प्रचारिकाये पर्वतोंकी उन उपत्तिकाओंमें वर्षोंसे प्रचारकार्य कर रहे हैं जहां न उनके अनुकूल मौसम है, न यूरूप जैसे रमणीक स्थान हैं, न आनेजानेका कोई सुलभ साधन है और जहां मलेरिया तथा काले ज्वरका एक छत्र राज्य है और जहांके लोगोंकी भाषा, खान पान तथा रहन-सहन एकदम विपरीत तथा नीचे स्तरके हैं। परन्तु विपरीत वातावरणके आगे सिर न झुकाकर इन्होंने धीरे धीरे उनकी भाषा रीतिरिवाजको सीख और अपने अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर जंगलमें एक स्वर्गकी रचना कर डाली। जंगलियोंको सभ्य और सुशिक्षित बनाकर इन्होंने एक नये यूरूपका निर्माण कर दिया इन जंगलोंमें।

विदेशियोंका एक छत्र राज्य

पर्वतीय अपढ, निर्धन तथा असभ्य लोगोंके बीच ये

गोरे चमडीवाले धनवान पादरी महाराजाओंकी भांति प्रभाव जमाये हुये हैं। इन्हें लोग ईश्वरके दूत समझते हैं और गौड फादर कहकर पुकारते हैं। इनके प्रभावकी ओर उंगलीतक उठानेवाली भारतकी एक भी धार्मिक संस्था वहां नहीं है। परिणामस्वरूप ईसाई और गैर ईसाई सभी इनका आदर करते हैं। बगलमें भले ही इनके छुरी हो, परन्तु मुखसे ये सभीके साथ बडा ही मधुर व्यवहार करते हैं।

प्रचारके हथकण्डे

विदेशी प्रचारकोंके बाह्य रूपके प्रति जो श्रद्धा व प्रेम वहां एक व्यक्तिके हृदयमें उत्पन्न होता है वह उस समय घृणामें परिणत हो जाता है कि जब वह इनके प्रचार षड्-यन्त्रको देखता है। इनमेंसे कुछ निम्न प्रकार हैं-

१- स्कूल, कालेज, अस्पताल तथा अनाथालय ये इनके मुख्य प्रचार केन्द्र हैं। यहांका वातावरण ये इस प्रकार निर्माण करते हैं कि यहांकी दीवारें भी ईसा मसीहके गीत गाती हैं।

२- स्कूलोंमें इनकी ओरसे दी जानेवाली छात्रवृत्तियां इनका बडा भयकर जाल है जिसमें जो फंसा नहीं कि ईसाई बना नहीं, वहांके निर्धन देश व जातिमें कीडे-मकोडोंकी भांति माबाप स्वयं अपने बच्चोंको इन जालोंमें फैंक जाते हैं।

३- अस्पतालोंमें दवाई देनेसे पूर्व सब मरीजोंको ईसासे दुआ मांगनेपर विवश किया जाता है।

४- ईसाई मरीजोंको विशेष सुविधायें दी जाती हैं।

५- पर्वतीय लोग अपने गांव-मुखियाके अन्ध भक्त व अनुयायी होते हैं। ये पादरी पहिले इन मुखिया लोगोंको ही नाना प्रकारके प्रलोभनों तथा सेवाओं द्वारा अपने काबूमें करते हैं फिर देखते देखते भेड-बकरियोंकी भांति गांवके गांव इनके द्वारा ईसाई बना दिये जाते हैं।

६- गरीबोंको ऋण देकर फिर वसूलीमें कडाई करते हैं और उसके ही सजातीय किसी ईसाई व्यक्ति द्वारा उसे ईसाई बन उस ऋणसे मुक्ति पानेका प्रलोभन दिखाते हैं।

७- अनाथ बच्चोंको दूरस्थ स्थानोंमें लेजाकर उन्हें विशेष रूपसे ईसाई बनानेका प्रयत्न करते हैं।

परिणाम

इस प्रचार शैलीका परिणाम यह हुआ है कि खासिया, नागा, मिकिर, गारो, मुण्डा आदि पर्वतीय जातियां चालीससे लगाकर अस्सी प्रतिशततक ईसाई बना दी गई हैं और कई क्षेत्र ऐसे बना दिये गये हैं जहां ईसाइयोंके विरुद्ध बोलना मृत्युको निमन्त्रण देना हो गया है। नागा प्रदेश तो स्पष्ट बागी देश बना दिया गया है। वहां स्वतन्त्र रूपसे बिना लाइसन्सके अस्त्र-शस्त्र लिये लोग घूमते हैं और सीधे पुलिस, सरकारी अधिकारी तथा बाहरके लोगों पर आक्रमण करते हैं। सरकार वहां स्कूल खोलनेकी चेष्टा करती है तो ये नहीं चलने देते हैं।

प्रचार तथा प्रचार केन्द्र

प्रचारक तथा प्रचार केन्द्रोंकी दृष्टिसे इन क्षेत्रोंकी ईसाई स्थिति निम्न प्रकार है-

क्रमसे	क्षेत्र	प्रचार केन्द्र	पादरी	प्रचारक
१	बिहार		२०३	५९२
२	रांची		५६	+
३	उडीसा		८२	१९७
४	खासिया-जैन्तिया	(आसाम)	८३	+
५	लुशाई पहाडी क्षेत्र	(,,)	४६	+
६	गारो पहाडी क्षेत्र	(,,)	१९	+
७	नागा क्षेत्र	(,,)	२५	+
८	मनीपुर स्टेट	(,,)	१५	+

नोट- नागा देशका बहुत भाग ऐसा है जहांका विवरण प्राप्त न हो सका। यह विवरण कोहिमाके आसपासका है।

मेरी दृष्टिमें स्थिति इतनी भयंकर है कि यदि इन क्षेत्रों-की ओर आर्य जातिके कर्णधारों, संस्थाओं तथा सरकारने शीघ्र ध्यान न दिया तो ये क्षेत्र स्वतः पाकिस्तानी रूप धारण कर जायेंगे और भारतकी सुरक्षा व उन्नतिको सदैव चुनौती देते रहेंगे।

इसके अतिरिक्त पर्वतीय लोग हजारों वर्षोंसे अलग रहनेके कारण अपने खान-पान तथा रहन-सहनमें इतने अलग हो गये हैं कि वह अपनेको मुण्ड, खासिया, नागा कहते हैं हिन्दु कहनेमें झिझकते हैं उनमें बहुतसे सांप, बिल्ली, कुत्ता, गाय आदिके खानेके शौकीन हैं। अतः इन्हें बडी ही समझदारी तथा धैर्यके साथ अपनी ओर आकर्षित

करना होगा। विदेशी धर्मप्रचारक तो इस स्थितिका लाभ उठा ही रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश देशके कुछ स्वार्थी राजनैतिक नेता भी उन्हें हिन्दुओंसे अलग रखनेमें ही अपना हित देख रहे हैं।

अतः इस समस्याके लिये आर्यजातिके सामूहिक शक्तिके जगानेकी आवश्यकता है और वहां कार्य करनेके लिये बड़े ही त्यागी, संयमी सेवाप्रेमी, धर्मप्रेमी तथा मिशनरी लगनवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। ईसाई गढोंके सामने हमें भी अपने गढ बनाने होंगे। इसके लिये धन चाहिये। परंतु यदि एक रु० मासिक एक लाख आर्यजन भी सार्व० सभाको चन्दा देनेका ५ वर्षके लिये भी प्रण कर लें तो निश्चितरूपसे आर्य नवयुवक प्रत्येक दृष्टिसे इन विदेशी पादरियोंको भारत छोडनेपर विवश कर देंगे और उलटे अमेरीका और यूरूपतकमें वैदिक धर्मका प्रचार कर देंगे, परन्तु शोक आर्यजातिके रक्तमेंसे वह पुरानी गर्मी न तडफ न जाने कहां चली गई है।

ईसाई प्रचार निरोध आन्दोलन

रूस और चीनमें ईसाइयतकी दुर्दशा

जो व्यक्ति पोप अथवा खलीफाका अन्ध-विश्वासी है, उसके आदेशपर चलना ही जिसका परमधर्म है वह कभी भी देश--भक्त एवं राष्ट्रीय हो ही नहीं सकता। तथा जो व्यक्ति मतान्धताका पक्षपाती है वह कभी किसी राष्ट्रमें प्रजातन्त्रीय भावनाओं एवं मानवताका हृदयसे समर्थक भी नहीं हो सकता। इसी तत्वको भली भांति समझकर आज रूस, चीन तथा विश्वके समस्त साम्यवादी राष्ट्र इन मतान्धताके प्रचारक, पोपडमके दास, तथा अन्ध-विश्वासोंके स्वर्गमें स्वांस लेनेवाले कथालिक ईसाईयोंको सत्यपर दृढताके साथ लानेमें प्रयत्नशील है। इनके प्रचारकोंको देश निकाला दे दिया गया है या कारागारमें डाला हुआ है। इनके मठों, आश्रमों तथा विश्वविद्यालयोंका अन्त कर शिक्षा संस्थाओंको अपने हाथमें ले लिया है और चर्चसे उनका नाता सर्वथा तोड दिया है।

कई स्थानोंपर तो कथालिक चर्चोंमें जानेवाले ईसाईयोंको ब्लैक लिस्टतक कर दिया है।

बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी कथालिक साप्ताहिक ऐक्जामिनरने अपने ९ जौलाईके अङ्कमें लोह--आवरणमें कथालिक ईसाई शीर्षकसे कुछ आंकडे छापे हैं और सिद्ध किया है कि आज विश्वके ४५ करोड कथालिक ईसाईयोंमेंसे ६३५०३००० साम्यवादी देशोंके लोहेके सिकंजोंमें जकडे हुए हैं। हम पाठकोंकी जानकारीके लिये वह आंकडे उद्धृत करते हैं—

१.	रूस	८०००००
२.	चीन	४००००००
३.	पोलैन्ड	२१००००००
४	उत्तर जर्मनी	२००००००
५	जैकोस्लोवाकिया	९००००००
६	हंगरी	६१२५०००
७	रूमानिया	३००००००
८	यूगोस्लाविया	५५०००००
९.	लिथूनिया	२२०००००
१०.	उत्तर वियतनाम	१२०००००
११.	लटेविया	५०००००
१२.	उत्तर कोरिया	२००००
१३.	बल्गेरिया	५६०००
१४.	अलबानिया	१०००००
१५.	एस्टोनिया	२०००
		६३५०३०००

बेल्जियम, अर्जेनटाइना आदि प्रदेशोंके आंकडे जो साम्यवादी नही है इनसे भिन्न हैं। इस समय कथालिकोंके गढ इटली, स्पेन, पुर्तगालमें विशेष रूपसे हैं। यूरोप तथा अमेरिकाके अन्य देश सुधारवादी ईसाई दलोंसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं। एशियामें इनके विशेष प्रचार--क्षेत्र जापान, भारत, फिलिपाइन्स स्याम, हिन्देशिया हैं तथा सारा अफ्रीका महाद्वीप है।

ईसाई संस्थाएँ

आज दिन भारतमें ईसाई मिशनों द्वारा संचालित संस्थाओंमें ९ लाख बालक एवं बालिकाएं शिक्षा पाती हैं। जिनमें ५ लाखसे ऊपर हिन्दू हैं। इन सब संस्थाओंमें हिन्दू सन्तानको अनिवार्य रूपसे ईसाइयतकी मतवादी शिक्षा दी जाती है। भारतीय महापुरुषोंकी खुली अवज्ञा इन छात्र छात्राओंके सम्मुख ईसाई अध्यापक एवं अध्यापिकाएं निरन्तर करती रहती हैं।

भारतीय शिष्टाचारको भुलाकर सर्वथा अभारतीय रहन सहन एवं अभिवादन इनको सिखाया जाता है। माता, पिता आदिको डडी मम्मीका पाठ पढाया जाता है। भारत-की राष्ट्रभाषा हिन्दीकी प्रायः उपेक्षा की जाती है। किसी भी ईसाई स्कूलके छात्र एवं छात्राको अच्छा हिन्दी लिखना और पढना नहीं आता।

भारतीय वेशभूषाके स्थानपर अंग्रेजी वेशभूषाका भारतकी सन्ततिको दास बनाया जाता है। तथा खानपानमें अन्डोंका प्रयोग नन्हें नन्हें बच्चोंको करानेकी स्थानस्थानसे शिकायतें आई हैं। आसाममें तो विद्यार्थियोंको रुपयोंका लालच देकर गौ मांसतक खिलानेकी शिकायतें विद्यमान् हैं।

मध्य प्रदेशकी सरकारने जसपुर रियासतके आदिवासि-योंके ग्रामोंमें जहां ईसाई स्कूल काम कर रहे हैं अपने स्कूल खोलकर जैसे ही शिक्षाको अपने हाथोंमें लेना आरम्भ किया कि भारतभरके ईसाई समाचारपत्रोंने और विशेष-कर संजीवन, हैरल्ड, एवं ऐक्जामिनरने बडे बडे शीर्षक देकर यथा Government denies constitutional right to Catholics. अर्थात् सरकार कथालिकोंके वैधानिक अधिकारोंको छीन रही है शोर मचाना आरम्भ कर दिया है।

हम स्पष्ट शब्दोंमें इन मिशनारियोंसे तथा भारत सर-कारसे यह पूछना चाहते हैं कि क्या भारतमें किसी भी वर्गको यह वैधानिक अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी मत-वादी शिक्षा अनिवार्य रूपसे बच्चोंके सरपर लादे तथा उनको भारतीयतासे विमुख कर अराष्ट्रीय बनावे।

हम दावेके साथ यह घोषणा करते हैं कि कैथालिक स्कूल तथा कालेज निश्चय ही भारतीयताके मार्गमें भयकर रोडे हैं और इनका सुधार अथवा अन्त हमें करना होगा।

यदि इन शिक्षणालयोंमें बाईबल मतवादी शिक्षाके स्थान पर भारतीय संस्कृतिके आधारपर नैतिक शिक्षा दी जाए तथा भारतीय वेषभूषा, भाषा एवं शिष्टाचारका पाठ पढाया जाय तथा भारतीय महापुरुषोंकी गौरवगाथाएं बालकोंके हृदयपटलपर बिठाई जायें तो हमें इनसे कोई विरोध नहीं।

यह ईसाई शिक्षा संस्थाएं हिन्दू बालकोंको अहिन्दू और ईसाई बनानेके बडे अड्डे हैं इनको बन्द करानेका व्यापक आन्दोलन आर्यहिन्दू संस्थाओंको देशके कोनेकोनेमें जमकर करना होगा। जबतक इन ईसाई संस्थाओंका भारतीय-करण न हो जाय हमें चैन नहीं लेना चाहिये।

क्या मध्य-प्रदेशकी भांति भारतकी अन्य प्रादेशिक सरकारें इस दिशामें अपना कर्तव्य समझेंगी और भारतके हिन्दू लाल-ललनाओंको इन विदेशी मिशनोंके जालसे बचानेमें कटिबद्ध होंगी।

हमारी दृष्टिमें यह आन्दोलन साम्प्रदायिक नहीं अपितु शुद्ध राष्ट्रीय एवं सिक्यूलरिज्मका रक्षक है। मतान्धता एवं अन्धविश्वास जिनपर ईसाइयत अवलम्बित है निश्चय ही भारतकी राष्ट्रीयता एवं मानववादके मार्गमें दो भयंकर रोडे हैं जिन्हें उखाडनेके लिये हमें सन्नद्ध होना होगा।

बम्बईके आर्च-विशपने घडियाली आंसू बहाए

श्रीयुत वैलेनियम कार्डीनल प्रेसियस बम्बईके आर्च विशपने अंग्रेजीके साप्ताहिक पत्र ऐक्जामिनरमें प्रकाशित किया है कि इनके साथी कैथालिक लोग मध्य-प्रदेश मेरठ आदिमें निरन्तर नाना प्रकारके कष्टोंमेंसे गुजर रहे हैं।

भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूके ईसाइयों-सम्बन्धी उद्गारोंकी सराहना करते हुए यह खेद प्रगट किया है कि योरुपसे लौटनेके बाद उनकी सारी आशायें धूलमें मिल गई है और भारत सरकारने किसी भी आश्वा-सनका पालन नहीं किया। अब उन्होंने हताश व निराश होकर गिरजाघरोंमें प्रार्थना करनेकी योजना बनाई है। जिससे तथाकथित सतावट करनेवालोंके हृदय परिवर्तित हो। यह प्रेसियस महोदय वही सज्जन हैं जो नेहरूजीके इटली पहुंचनेसे पहले रोमके पोपसे मिले हैं और इटलीके समाचारपत्रोंमें बाघूमें ईसाईयोंकी सतावटकी बडी चर्चा की है।

हम इस लेखमें मध्य-प्रदेशसम्बन्धी उनकी शिकायतों-की चर्चा न करके बाघूके सम्बन्धमें ही प्रकाश डालना चाहते हैं।

राजकुमारी अमृतकौरके पदार्पणसे बाघूका नाम भारतके कोने कोनेमें विख्यात हो गया है और इसके सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी जनताको हो चुकी है। नीचे लिखी घटना ओंसे यह पता चल सकेगा कि बाघूमें सतावट ईसाईयोंकी ओरसे है या वहांके आर्यसमाजी हिन्दूओंकी ओरसे है।

१. बाघूमें एक शुद्ध हरिजनके छप्परको फूंकनेका अभियोग मेरठके सेशन न्यायालयमें पुलिसकी ओरसे कुछ ईसाईयोंके विरुद्ध चल रहा है।

२. ईसाईयों द्वारा चौ. रामफल व रामचन्दर गूजरोंको लाठियों द्वारा पीटने और उनकी हाथकी हड्डी तोडनेके सम्बन्धमें ९ ईसाईयोंका चालान पुलिसकी ओरसे किया गया है।

३. एक हरिजन हिन्दूको पीटनेके सम्बन्धमें तीन ईसाईयोंको बाघूकी ग्रामपंचायतने दंडित किया है।

४. ८ हिन्दुओंके विरुद्ध १०७, ११० की कार्यवाही अदालतमें चल रही है। जिसमें गवाही देते हुए एक ईसाई गवाह बेहोश होकर गिर पडा।

इन घटनाओंसे यह स्पष्ट हो जावेगा कि बम्बईके आर्च विशपके आरोप भारत सरकार तथा आर्य हिन्दू जनतापर कितना महत्व रखते हैं। गिरजाघरोंमें हृदय परिवर्तनकी प्रार्थना करना वस्तुस्थितिपर पर्दा डालनेके लिये घडियालके आंसुओंके समान ही केवल है।

ईसाई चर्चोंकी एकता आन्दोलनसे कथालिक चर्च बौखला उठा

डॉक्टर फिशरने इंग्लैड आदिके विभिन्न ईसाई चर्चोंको एक संगठनमें लानेका आन्दोलन कुछ समयसे आरम्भ किया हुआ है। कथालिक पोपने अपने पन्थको इस आन्दोलनसे पृथक् रखनेका निर्णय किया और अपनी दुन्दुभी पृथक् ही बजाते रहनेकी घोषणा की है।

रेवेरेन्ड एस. विलियम सबने ६ जुलाईको लन्दनके सैन्ट मैगनस मार्टयरके चर्चमें इस एकीकरण आन्दोलनकी चर्चा करते हुए कहा है कि दक्षिण भारतके चर्चको मिलाकर तो ईसाइयतपर भारी कुठारा चलाया गया है, क्योंकि दक्षिण भारतके चर्चके विधानमें यह नियम अंकित है कि इस चर्चके किसी सदस्यके लिये ईसाई मान्यताओंको सर्वांशमें मानना आवश्यक नहीं है। अर्थात् वह चाहें तो ईसु मसीहका सलीबपर मरना और फिर जी उठना और सदेह स्वर्ग जानेमें विश्वास न रखें और यदि चाहें तो कुंवारी मरियमसे ईसु मसीहका उत्पन्न होना भी न मानें।

हम दक्षिण भारतके चर्चके इस उदार नियमकी सराहना करते हैं। उन्होंने अन्धविश्वासी एवं तर्कशून्य मान्यताओंसे ऊबकर ही ऐसा नियम बनाया है। यदि वह इस नियमको न बनाते तो दक्षिण भारतके बुद्धिमान् जन कदापि ईसाइयतको अंगीकार न करते।

अब समयकी यह मांग है कि भारतके सब ईसाई चर्च मिलकर भारतमें राष्ट्रीय चर्चकी स्थापना करें और विदेशी चर्चों और विशेषकर रोमके पोपसे चीनके राष्ट्रीय चर्चकी भांति अपना सम्बन्ध सर्वथा विच्छेद कर दें तथा तर्कशून्य मान्यताओं और अन्धविश्वासोंको तिलांजलि देनेकी भी साथ ही घोषणा करें। भारतके राष्ट्रीय चर्चको बाईबिलका भारतीय संस्करण स्वयं तैयार करना चाहिये और उसमें सब आवश्यक संशोधन निस्संकोच और निर्भय होकर कर डालने चाहिये। इसीमें धर्मका प्रकाश राष्ट्रीयताका विकास एवं मानवताकी उन्नति अन्तर्हित है।

शिवदयालु, तिलक पार्क मेरठ।

आवश्यक सूचनायें

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे प्रार्थना है कि यदि आपने अपना केन्द्र खर्चका हिसाब अभीतक न भेजा हो तो कृपया शीघ्रातिशीघ्र भेजनेकी व्यवस्था करें। जिससे हमें आपको वह भेजनेमें सुविधा हो।

सितम्बर ५५ में हुई संस्कृतभाषा परीक्षाओंका परीक्षाफल १५ अक्टूबर १९५५ को प्रकाशित किया जायगा।

गीता, वेद, उपनिषद् तथा साहित्यिक परीक्षाओंका परीक्षाफल ३० नवम्बर १९५५ को प्रकाशित किया जायगा।

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

●

यवतमाल (म्यु. हा.)

प्रमाणपत्र समारंभका कार्यक्रमः- प्रार्थनागीत होनेपर १ मुख्याध्यापक तथा केन्द्रव्यवस्थापक श्री ह० ग० केलकरजीने " संस्कृत विषयके लिये प्रोत्साहनपर अपने विचार प्रगट किये और रा. भा. प्र. समितिका प्रचारकार्यका तथा ग्रन्थनिर्मितिका गौरव करके अध्यक्ष महोदयजी श्री रा. रा. प्र. रा. देशमुख, बी. ए. एल. एल बी वकीलको हार समर्पण किया।

२ हमारी शालामें कु. उषा गोखले तथा कु. मालती वालिंबे इन दो विद्यार्थिनीयोंने " संस्कृत-भाषा बालिकाओंने अवश्य पढना चाहिये " इस विषय-पर अपने विचार प्रगट किये हैं।

३ हमारी शालामेंके शिक्षक श्री. रा. रा. श्री. फौं. जोशी जीने संस्कृतका महत्त्व कथन करके लडकियोंको प्रोत्साहन दिया।

४ प्रचारक, सं० शि. लांबुले शास्त्रीजीने १९५३ से १९५५ तक केन्द्रका इतिवृत्त कथन किया तथा केन्द्रोन्नतिके लिये प्रोत्साहनपर भाषण किया। " संस्कृतभाषा और भारती जनता " इनका ' जलमत्स्य ' जैसा संबंध है ऐसा प्रतिपादन किया। अन्य परीक्षाओंकी अपेक्षा स्वा० सं० संचालित परीक्षाओंकी श्रेष्ठता एवं सुलभता भी बता दी और सं. भा. प्र. समितिका कार्यविस्तार भी कथन किया।

५ अध्यक्षीय भाषण—

उन्होंने भाषणमें लडकियोंको प्रोत्साहन तो दिया ही था फिर भी संस्कृतकी श्रेष्ठता तथा अलौकिकत्व भी विद्वत्ता-प्रचूर बताया। भाषणका सारांश— आपने " श्रुतिकाल, स्मृतिकाल तथा आधुनिककाल " इन तीनों कालखण्डमें कैसी ग्रंथनिर्मिति हुई और भारती प्रजाकी उन्नति तथा संस्कृति कैसी थी यह बता दिया।

संस्कृत साहित्यमें मनोरंजन, आदर्श बोध, राजकारण राष्ट्रोन्नति, आत्मोन्नति तथा त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्ति बताकर, कालीदास, भवभूति भारवी, माघ, भास, शूद्रक, बाण आदि कविकी अमरग्रन्थ निर्मितिका वर्णन बड़ा प्ररोचक किया।

महाभारत तथा रामायणकी श्रेष्ठता वर्णन करके बिना संस्कृत इन ग्रन्थोंका ज्ञान नहीं होगा इसीलिये संस्कृत भाषाध्ययनकी आवश्यकता प्रगट की।

अ विशेष- आपने यह बताया कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थका अध्ययन करके ही स्व० महात्माजीकी अहिंसा तथा प्रस्तुत भारतके पंतप्रधानजी पं० जवाहरलालजीका शान्तिवाद भी प्राचीन संस्कृतिका ही विकास तथा आदर्श है।

ब विशेष- भारतीय प्रादेशिक भाषाओंकी ही जननी संस्कृतभाषा नहीं बल्कि अंग्रेजी, जपानी, जर्मनी आदि यौरोपीय भाषाओंकी भी जननी संस्कृतभाषा है यह सोदाहरण बताकर हमें मुग्ध कर दिया।

६ कु. इन्दु दामले, चिटनीस शारदा मंडल, इस बालिकाने आभार प्रदर्शन किया। अन्तमें ' वन्देमातरम् ' गीतसे समारंभ समाप्त हुआ।

गंगाखेड

दिनांक १६।४।५५ शनिवार सायं ५ से ६ पर्यंत सरकारी हायस्कूलके विशाल भवनमें यह कार्यक्रम श्री. मु. अध्यापक पुरुषोत्तमराव कुलकर्णी, बी. ए. ब. टी. अध्यक्षतामें संपन्न हुआ। प्रारंभमें श्री हरिश्चंद्रराव बी. ए. सहअध्यापक तथा श्री रामचंद्रराव इंटर स. अ. के अनुमोदन करनेपर अध्यक्ष महोदयने अपना स्थान अलंकृत किया। केन्द्र व्य० श्री. नारायणाचार्य बोरफलेने उ. म. पुष्पहार द्वारा सत्कार किया। श्री हरिश्चंद्ररावने वार्षिक विवरण उपस्थित नागरिकोंको सुनाया और

श्री. पुरुषोत्तमराव संदीकरसह आ. लि. मन्त्रीने केन्द्रका वार्षिक जमाखर्च पढकर बताया।

श्री शरच्चंद्रराव बी. ए सहअध्यापक इनका प्रभावशाली भाषण हुआ। संस्कृतभाषाको भारतवर्षसे ही भारतेतर बाहरके देशोंमें बहुत बडा आदर है। इसके पश्चात् उत्तीर्ण विद्यार्थीयोंको प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक श्री. अध्यक्ष महोदयके करकमलों द्वारा वितरित किये गये। श्री अध्यक्ष महोदयने अपने भाषणमें कहा कि संस्कृतका अध्ययन करना और संस्कृत परीक्षा देना केवल विद्यार्थियोंका काम नहीं है, यह अध्ययन करना बालवृद्ध, प्रौढ स्त्रीपुरुषोंका आद्य कर्तव्य है।

इसके पश्चात् श्री वेन्कटय्य नारायणाचार्य बोरफळे वैयाकरण साहित्यभूषणका सारगर्भित संस्कृत और अपनी भारतीय संस्कृतीपर भाषण हुआ। इन्होंने अपने भाषणमें कहा कि एक कठिन काल ऐसा था कि अपने पूर्वज ऋषिमुनियोंने वृक्षके पर्णपर लिखकर अपने वेदादि ग्रंथोंकी रक्षा की। परतु आज इतनी कागज और छपाईकी सुलभता होनेपर भी भारतीय लोग पाश्चात्य संस्कृतिकी झूठी मायाजाल अभीतक नहीं छोडते। इसी कारण हम हमारी भारतीय संस्कृतिका त्याग कर रहे हैं। परंतु संस्कृतभाषाका पूरा ज्ञान होनेपर अपनी मातृरूप आदर्श भारतीय संस्कृतिको जान सकेंगें।

इसके पश्चात् वंदेमातरम् गीत होनेपर सभा समाप्त हुई।

[स्वाध्याय मण्डल द्वारा संचालित]

अखिल भारतीय संस्कृतभाषा परीक्षा समिति.

संस्कृतभाषा परीक्षाओंकी सन् १९५५ की परीक्षार्थी संख्या

क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितम्बर
१	राजपारडी	१४	१४
२	वापी	१०	१०
३	वडनगर	१७	×
४	कहानवा	२५	×
५	गाम्भू	७	×
६	टुण्डाव (उ गु)	१७	२१
७	मांडवी	१०	२१
८	गावट	२१	×
९	महेसाणा	१६	२१
१०	ओरणा	५२	४२
११	कल्याण केम्प	५	×
१२	हारीज	१०	१०
१३	दावर	८	×
१४	मणुन्द	१६	१८
१५	आमोद	१३	२१
१६	सूपा	१५	१७
१७	डभोऊ	३४	×
१८	हॉसोट	३५	१३
१९	सोखडा	२९	१३
२०	वहुधान	२३	×
२१	वडनगर (६८)	१६	१८
२२	ओड	७२	३६
२३	चिखली	३०	३९
२४	कडी	२०	२४
२५	पारडी	१०	१४
२६	कोसंबा	१३	७
२७	आणन्द (शा हा)	२९	५
२८	पाटण	४३	४८
२९	नायगाव	१२	११
३०	चकलाशी	१७	१४
३१	लांभवेल	१९	×
३२	विसनगर	४०	८१
३३	सामरखा	३३	×
३४	धनसुरा	२७	३२
३५	मियासरभण	१०	१०
३६	खम्भात	१७	२५
३७	कपडवणज	१३	१३
३८	राजपीपला	५६	६३
३९	डभोई	५२	५६
४०	व्यारा	२०	१४
४१	धोलका	७	११
४२	भरुच	१२५	६१
४३	भालोद	११	×
४४	नावली	१३	×
४५	बिलीमोरा	५१	४१
४६	चांदोद	३०	२५
४७	नडियाद	५९	४८
४८	सणोसरा	११	११
४९	जेतलपुर	४५	४७
५०	महेमदाबाद	२८	३३
५१	मालेज	११	१०
५२	धीनोज	२७	४३
५३	सिद्धपुर	९	२२
५४	कुर्ला	१८	२८
५५	नारगोल (न्यू हा.)	२१	२९
५६	नासिक	११	१५

क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितम्बर	क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितम्बर
५७	लांघनज	१३	१५	९२	दाताला	१३	×
५८	आणन्द (पा हा)	२७	२६	९३	मोर्शी	८	×
५९	सिनोर	२०	३५	९४	मोझरी	१३	×
६०	मबाला	२६	१३	९५	उमरड (न्यू हा)	३४	१२
६१	कलोल	१४		९६	सागर	११	×
६२	सूरत	२३१	४१६	९७	उमरखेड	४२	×
६३	नवसारी	३६	३९	९८	खामगांव	७५	६०
६४	बलसाड	१७	२७	९९	धरमपेठ नागपूर	२३	१५
६५	बारडोली	×	१७	१००	तेल्हारा	११	१०
६६	सांधियेर	×	११	१०१	वरोरा	२६	१७
६७	डांगरवा	×	३१	१०२	धामणगांव	२६	३३
६८	गडत	×	४०	१०३	मलकापूर	१४	६५
६९	अमलसाड	×	१०	१०४	सिंदी	१०	×
७०	लाडोल	×	१७	१०५	खमरिया	१०	१३
७१	मालपुर	×	३४	१०६	वाशीम	१४	×
७२	कीम	×	१८	१०७	नन्दुरबार	१६	२१
७३	नारगोल ता वा हा.	×	३६	१०८	मेहेकर	११	१८
७४	बेचराजी	×	१५	१०९	हिंगणघाट	१५	१५
७५	आबूरोड	×	१०	११०	यवतमाल(म्यु.हा)	१०	३६
७६	मोडासा	×	३७	१११	मालेगांव	१५	१४
७७	उमल्ला	×	१३	११२	कवर्धा	२९	×
७८	पीलवई	×	४	११३	पातूर	१४	१३
७९	उमरवा	×	१३	११४	चिखली	६३	×
८०	बडौदा	×	५२	११५	नवरगांव	१३	१०
८१	रणुंज	×	१०	११६	चांदा	७४	१००
८२	बुलढाणा (प हा)	८६	१०५	११७	धरणगांव	१४	१६
८३	गोंदिया	१४	९	११८	तुमसर	७८	१०४
८४	कारंजा (जे. ई)	४६	११	११९	बैतूल	४८	७४
८५	भण्डारा	३७	५	१२०	पुसद	१०	१९
८६	अमरावती	४६	+	१२१	बुरहानपुर	४	१८
८७	यवतमाल ग हा.	११	३४	१२२	जबलपुर	६६	८१
८८	वणी स हा	१०	११	१२३	अकोला	५३	१०१
८९	वणी प्र. म हा	११	१४	१२४	शेगांव	१०	१०
९०	पाण्डुर्णा	११	+	१२५	लाखनी	१४	३७
९१	हिवरखेड	१५	+	१२६	नागपूर	१९	१५८

क्रमांक	केन्द्र नाम	मार्च	सितम्बर	क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितम्बर
१२७	मंगरूळपीर	२४	×	१६२	सोनपेठ	१४	×
१२८	नागपूर (प हा)	१०	६३	१६३	मेदक	२३	१५
१२९	देऊळगांवरा'जा	५६	४०	१६४	वाशी	६	×
१३०	मूर्तिजापूर	२७	×	१६५	पैठण	२७	१५
१३१	छिंदवाडा	६१	×	१६६	सोरापुर	१५	×
१३२	वर्डी नागपूर	१४	६०	१६७	अणदूर	१३	११
१३२	राजनांदगांव	×	५८	१६८	हनमसागर	१४	१२
१३४	रमाखिरिया	×	२०	१६९	कुकनूर	१३	१८
१३५	शेलगांव बाजार	×	१८	१७०	उस्मानाबाद	५०	३७
१३६	शेंबाबुग	×	१४	१७१	गेवराई	३८	१८
१३७	नान्दूरा	×	११	१७२	शहापूर	२०	१७
१३८	लोणार (वि. वि.)	×	१४	१७३	कळंब	२८	२३
१४९	कारजा (मु जे हा)	×	२९	१७४	अम्बेम्बलम्	८	५
१४०	अमडापूर	×	१३	१७५	पाटोदा	१०	×
१४१	नागपूर (सु. म वि)	×	२५	१७६	तुळजापुर	९	२२
१४२	भाटापारा	×	४१	१७७	करीमनगर	११	१२
१४३	साखरखेर्डा	×	७५	१७८	वरगल	६	×
१४४	अमरावती (स.वि उ)	×	२१	१७९	केदिला	१४	१५
१४५	वर्धा (न्यू इं हा)	×	५७	१८०	जोगीपेठ	२७	×
१४६	वर्धा ग हा	×	३२	१८१	शहाबाद	२८	६
१४७	अमरावती (स म.)	×	३५	१८२	लातूर	२०	१२
१४८	अमरावती (न्यू हा)	×	६१	१८३	कामारेड्डी	१३	९
१४९	जलगांव जामोद	×	१०	१८४	माणिकनगर	२१	१०
१५०	दिग्रस	×	३५	१८५	जालना	१०	×
१५१	लोणार (शि हा.)	×	२८	१८६	बीड	९९	३१
१५२	पातुर्डा	×	१५	१८७	शिरूर	१४	१०
१५३	जगदलपुर	×	५६	१८८	मोमिनाबाद	१४	१०
१५४	नेरपरसोपन्त	×	१५	१८९	निज़ामाबाद	१४	१९
१५५	नरसिंहपुर	×	१०	१९०	औंढानागनाथ	७	×
१५६	द्वारव्हा (प हा)	×	१६	१९१	गंगाखेड	१५	११
१५७	आकोट	×	४५	१९२	परभणि	५२	×
१५८	बामणोद	१६	९	१९३	मुधोळ	२४	×
१५९	भुसावल	८	×	१९४	शंकरपल्ली	१९	×
१६०	नवापुर	१८	×	१९५	उदगीर	७०	×
१६१	नारायणपेठ	१८	२६	१९६	करडकल	१७	×

क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितंबर	क्रमांक	केन्द्र-नाम	मार्च	सितंबर
१९७	जिन्तूर	५४	×	२३१	मण्डलेश्वर	३८	१५
१९८	वाढवणा	८	८	२३२	जोधपुर	२४	३१
१९९	परतूर	३०	×	२३३	झब्बाव	१५	११
२००	पण्ढरपुर	१८	×	२३४	मद्रास	१०	१५
२०१	कलवाकुर्ती	५	१३	२३५	बडवानी	२०	१२
२०२	सिरासिल्ला	१४	×	२३६	खरगोन	१२	११
२०३	ताण्डूर	४	×	२३७	बैरागढ	१०	१४
२०४	माणकेश्वर	×	७	२३८	झरई	७	१९
२०५	आष्टी	×	१२	२३९	धरमपुरी	३	८
२०६	पोतंगल	×	१०	२४०	महीदपुर	११	१०
२०७	चन्द्रगोंड	×	१०	२४१	धार	१८	२०
२०८	देगलूर	×	२६	२४२	नीमचसिटी	७	×
२०९	जलगांव	×	५	२४३	सेंधवा	१०	×
२१०	हिंगोली	×	१२	२४४	वाणगंगा	२१	१२
२११	सेलू	×	३०	२४५	इन्दौर	३१	२८
२१२	वेलीकट्टे	×	९	२४६	बिसवां	१३	×
२१३	उडिपि	×	११	२४७	कनखल	८	×
२१४	त्रिशिरःपुरी	×	११	२४८	भिकनगांव	१८	२१
२१५	मानवत	×	२२	२४९	फतेहगढचूडियां	३९	×
२१६	महबूबनगर	×	५	२५०	मनोहरपुर	१२	×
२१७	कासारबोरी	×	१०	२५१	अजमेर	३७	१५
२१८	लोहारा	×	१५	२५२	नशिराबाद	१५	२५
२१९	औरंगाबाद	१४	१७	२५३	जोहानीसबर्ग	६५	×
२२०	किशनगढ	९८	×	२५४	गांधीनगर	१०	१३
२२१	बिजापूर	१०	×	२५५	लाखेरी	×	२९
२२२	शिवपुरी	४२	३७				
२२३	फाझीलका	४२	×	२५६	महवा	×	३१
२२४	झज्झर	१०	×	२५७	रशीदपुर	×	११
२२५	बूंदी	७	×	२५८	गढीहाथीशाह	×	१२
२२६	पुष्कर	१०	१७	२५९	किसुमु	×	५
२२७	ठीकरी	१५	९	२६०	इन्दरगढ	×	१२
२२८	पाझल्या	२०	१२	२६१	बिरनीलकंठपुर	×	१४
२२९	पटियाला	९	×	२६२	न्यू थीउ	×	१३
२३०	बहेडी	१०	१६	२६३	नीमचछावनी	×	११

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

महाभारत (सचित्र)

		मूल्य	डा. व्य.
१	आदिपर्व	७)	१)
२	सभापर्व	३॥)	॥)
३	शांतिपर्व (पूर्वार्ध)	१०)	१।)

महाभारतकी समालोचना (भाग १-२)

	मूल्य	डा. व्य.
प्रत्येक भागका	॥।)	।)

रामायण कालीन आर्यसंस्कृति निबंधमाला

	मूल्य	डा. व्य.
(भाग १)	१॥)	॥)

वेद-परिचय

(तीन भागोंमें)

	मूल्य	डा. व्य.
प्रथम भाग	१॥)	।)
द्वितीय भाग	१॥)	।)
तृतीय भाग	२)	।-)

वेद-प्रवेश

		मूल्य	डा. व्य.
१	मरुद्देवताका मन्त्र-संग्रह	५)	॥।)
२	अश्विनौ देवताका मन्त्र-संग्रह	५)	१)
३	ऋग्वेदके अग्नि-सूक्त	२)	॥)
४	मरुद्देवता मंत्र सामन्वय-चरणसूची	१)	॥)

योग-साधन ग्रन्थमाला

		मूल्य	डा. व्य.
१	ब्रह्मचर्य	१॥)	।)
२	योगके आसन	२॥)	।-)
३	आसनोंका चित्रपट	।)	-)
४	योगसाधनकी तैयारी	१)	≶)
५	सूर्य नमस्कार	१)	≶)
६	सूर्य नमस्कारोंका चित्रपट	।)	-)
७	सूर्य भेदन व्यायाम	॥।)	≈)

आगम निबन्ध-माला

		मूल्य	डा. व्य.
१	वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।)	≈)
२	वैदिक सर्प विद्या	॥≈)	≈)
३	वेदमें चर्खा	॥≈)	≈)
४	मानवी आयुष्य	॥)	≈)
५	इन्द्रशक्तिका विकास	॥)	≈)
६	वेदमें कृषि-विद्या	।)	-)

		मूल्य	डा. व्य.
७	छूत और अछूत (भाग २ रा)	१)	≈)
	(भाग १ समाप्त है।)		
८	शतपथ बोधामृत	।≈)	-)

बालकोंकी धर्मशिक्षा

		मूल्य	डा. व्य.
१	प्रथम भाग	≡)	-)
२	द्वितीय भाग	।-)	-)
३	वैदिक पाठमाला	।-)	-)

वेदका स्वयं-शिक्षक

	मूल्य	डा. व्य.
(भाग १ और २) प्रत्येक भागका मूल्य	१॥)	।-)

संस्कृत-पाठ-माला

(२४ भाग)

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

	mूल्य	डा. व्य.
२४ भागोंका मूल्य	१२)	१।)
प्रत्येक भागका मूल्य	॥)	≈)
१ सुबोध संस्कृत व्याकरण भाग १	॥)	⌂≈)
२ सुबोध संस्कृत व्याकरण भाग २ छप रहा है।		
साहित्य सुधा (पं मेधाव्रतजी) भाग १	१।)	)

अन्य पुस्तकें

		मूल्य	डा. व्य.
१	विजया दशमी (दशहरा)	॥)	-)
२	आर्योंका भगवाध्वज	।)	-)
३	हिन्दी मुसलमानोंकेकारनामोंका चिट्ठा	।≈)	-)
४	इस्लामके आक्रमणकी जागृतिका पार्श्वभूमि	१।)	।-)
५	श्री छत्रपति शिवाजी महाराजका जयसिंहको पत्र	≶)	-)
६	शेषशायी नारायण	≈)	-)
७	स्पिनोझा और उसका दर्शन	२)	।-)
८	विष्णु सहस्रनाम	१॥)	।-)
९	मंगलमूर्ति गणेश	१॥)	⌂≶)
१०	संध्या उपासना	⌂≈)	⌂-)
११	ईश्वरका साक्षात्कार (प्रथम भाग)	१)	॥)
१२	गा-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग)	६)	१॥)

संस्कृत पुस्तक

	मूल्य	डा. व्य.
कुमुदिनी चन्द्र	४)	॥≈)

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम पारडी जि. सूरत

सदा तत्पर रहते हैं। बलवान पिताके उदरसे यह अग्नि उत्पन्न हुआ है इसलिये यह वीर शत्रुका निःपात करनेके लिये सदा तत्पर रहता है और इस कार्यमें वह कभी आलस्य नहीं करता।

अग्रणी अपने स्थानपर शोभता रहे और उसका सत्कार अनुयायी करते रहें। यह अग्रणी बलवान् वीर मातापिताके उदरसे उत्पन्न होनेके कारण जन्मसे ही वीरके करने योग्य शत्रु निःपातके कार्योंमें तत्पर रहता है और कभी इसमें आलस्य नहीं करता। अग्रणी सदा आलस्यरहित तथा उद्यमी हो। (सु-रणः) उत्तम ज्ञानवान तथा उत्तम रण-युद्ध-करनेमें कुशल हो।

अमित्रायुधो॑ मरुता॑मिव प्रयाः
प्र॑थमजा ब्रह्म॑णो विश्व॒मिद् वि॑दुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म॑ कुशिका॒स एरि॑र
एक॑एको दमे॑ अ॒ग्निं समी॑धिरे ॥ १५ ॥ ३२

(अ-मित्र-युधः) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले, (मरुतां इव प्रयाः) मरुतोंके आक्रमक सेनासंघोंके समान आक्रमण करनेवाले (ब्रह्मणः प्रथमजाः) ज्ञानके साथ प्रथम उत्पन्न हुए ऋषि (विश्वं इत् विदुः) सब विश्वको जानते थे। वे (कुशिकासः) ये कुशिक (द्युम्नवत् ब्रह्म आ ईरिरे) तेजस्वी अथवा हविष्यान्न युक्त स्तोत्र प्रेरित करते हैं। वे (दमे एकः एकः) अपने घरमें अकेले अकेले (अग्निं समीरिरे) अग्निको प्रदीप्त करते हैं। ॥ १५ ॥

कुशिक शत्रुके साथ युद्ध करनेवाले, तथा मरुतोंकी आक्रमक सेनाके समान शत्रुपर आक्रमण करनेवाले थे। वे आक्रमक भी थे, शत्रुका पराभव भी करते थे और ज्ञानके लिये प्रथमसे प्रसिद्ध थे, वे विश्वका सब ज्ञान जानते थे। वे तेजस्वी स्तोत्र प्रकाशित करते थे और घरमें अकेले अकेले अग्निको प्रदीप्त करके हवन करके यज्ञ करते थे।

ज्ञानी विद्वान् ऋषि शत्रुके साथ युद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें रखें, सैनिकोंके समान शत्रुपर आक्रमण करें, साथ साथ ज्ञानके लिये भी प्रथम स्थानमें रहनेयोग्य श्रेष्ठ ज्ञानी हों और तेजस्वी स्तोत्र प्रकाशित करें। ज्ञानी लोग ऐसे शूरवीर तथा विद्वान हों।

यदुद्य त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञे अ॒स्मिन्
होत॑श्चिकित्वोऽवृ॑णीमही॒ह ।
ध्रुवम॑या ध्रुवमु॒ताश॑मिष्ठाः
प्रजा॒नन् वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥ १६ ॥ ३३

हे (होतः) देवोंको बुलानेवाले (चिकित्वः) ज्ञानी अग्ने ! (यत् अद्य अस्मिन् प्रयति यज्ञे) आज यह यज्ञ शुरू होनेपर इसमें (इह त्वा अवृणीमहि) यहां तुझे हम स्वीकारते हैं। तू (ध्रुवं अयाः) इस ध्रुव देवताके पास जा, (ध्रुवं उत अशमिष्ठाः) और उस ध्रुव देवोंको शान्त तथा आनन्द प्रसन्न कर और (प्रजानन् विद्वान्) तू सब जानता हुआ विद्वान् (सोमं उप याहि) हमारे सोमयागके पास आओ ॥ १६ ॥

अग्नि ध्रुवके पास जावे और ध्रुवको आनन्द प्रसन्न करे। यहां ' ध्रुव ' देवताओंका संकेत है क्योंकि सब देव ध्रुव अर्थात् सुस्थिर होते हैं। यज्ञमें अग्नि प्रदीप्त करते हैं, उसमें हवन करते हैं, अग्नि उस हविर्द्रव्यको लेकर देवोंके पास जाता, उनको वह हव्य देता और उनको प्रसन्न करता है। यह सब अग्नि करता है। अग्निको यह विधि विदित है।

ज्ञानी अग्रणीको प्रमुख स्थानमें लोग बिठलाते हैं, उसका सत्कार करते हैं। वह अग्रणी अपने साथ अनेक विबुधोंको लाता है, अपने साथ बिठलाता है, उनकी संमतिसे स्थायी हितसाधनके कार्य करता है जिससे सब लोग आनन्द प्रसन्न होते हैं।

यहां यह सूक्त समाप्त होता है।

अग्नि देवताके मन्त्र

मुंबापुरीके विश्वविद्यालयने बी० ए० के संमाननीय अभ्यासक्रम (B. A. Hom.) के लिये ये अग्निमंत्र चुने हैं। ये मंत्र दो खण्डोंमें विभक्त किये हैं। प्रथम खण्डमें ऋग्वेद १।१४३ के ८ मंत्र और ऋ० ३।९ के ९ मंत्र हैं तथा द्वितीय खण्डमें ऋ० ३।२९ के १६ मंत्र हैं। इस तरह ये ८+९+१६= कुल ३३ तैं तीस मंत्र अग्नि देवताके हैं। ये ऋग्वेदके मन्त्र हैं। इनमें पहिले ८ मंत्र दीर्घतमा औचथ्यके हैं और बाकीके २५ मंत्र विश्वामित्र गाथिनः के हैं। पहिले ८ मंत्र प्रथम मण्डलके हैं और शेष २५ मंत्र तृतीय मण्डलके हैं।

अग्नि देवताके मंत्र ' आग ' का वर्णन करते हैं, यह (Fire worship) अग्निपूजा ही है ऐसा विचार आज बहुतसे विद्वानोंमें प्रचलित हुआ है। पर अग्निका वर्णन केवल आगका

हो वर्णन है ऐसा वेदके मंत्र देखनेसे सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि वेदमन्त्रमें ऐसा कहा है—

वही अग्नि है

तदेवाग्निः, तदादित्यः, तद्वायुः, तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं, तद्ब्रह्म, ता आपः, स प्रजापतिः॥१॥

वा० यजु० ३२

(तत्) वह ब्रह्म ही अग्नि है, वह ब्रह्म ही आदित्य है, वह ब्रह्म ही वायु और वही चन्द्रमा है, वही शुक्र (वीर्य) है, वही (ब्रह्म) ज्ञान है, वही जल है और प्रजापालक भी वही है।

यहां कहा है कि ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर महेश्वर, देव महादेव आदि पदोंद्वारा जिस महान् आदि शक्तिका बोध होता है वह आदि शक्ति ही अग्नि आदित्य, वायु, चन्द्रमा आदिके रूपोंमें इस विश्वरूपमें हमारे सामने हैं। 'विश्वरूप' नाम भी परमेश्वरका है इसका अर्थ 'सर्वरूप' है। ईश्वरका ही यह सर्वरूप है जिसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि रूप समिलित हैं। तथा–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्, विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० १।१६४।४६

'एक ही सत् है, जिसको ज्ञानी अनेक नाम देते हैं। अग्नि, यम (मातरिश्वा), वायु, इन्द्र, वरुण, मित्र, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान् ये नाम उसीको देते हैं।' अस्तु इस तरह अग्नि पदसे परमात्माका भी वर्णन होता है। परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वरका भाव एक ही है।

त्रैती, द्वैती, अद्वैती और एकत्ववादी

यहा द्वैती, अद्वैती, त्रैती तथा एकत्ववादी झगडा करेंगे। परंतु यहा वैसा विवाद करनेका कोई कारण नहीं है। ईश्वर सर्वत्र भरपूर भरा है, अणुरेणुमें वह भरपूर भरा है। हरएक पदार्थ उससे ओतप्रोत भरा है। इसलिये जो पदार्थ हमारे सामने दिखाई देते, उसमें वह ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर ओतप्रोत है। इससे भी हरएक पदार्थके रूपमें परमेश्वर है ऐसा ही होता है। एकत्ववादी अभिन्न-निमित्त-उपादानकारण मानते हैं और परमेश्वरके ही ये रूप हैं ऐसा समझते हैं। परंतु द्वैती या त्रैती प्रत्येक पदार्थमें परमेश्वर है ऐसा मानते हैं। दोनों मतोंसे प्रत्येक वस्तुके रूपमें ईश्वर है ऐसा ही सिद्ध होता है।

अग्नि परमेश्वरसे ओतप्रोत भरपूर भरा है अर्थात् अग्निविद्या तो द्वैती, त्रैती और एकत्ववादीयोंके मतके अनुसार अग्निरूपमें परमात्मा आता है और परमेश्वरका अग्निरूपमें आना अपरिहार्य है। इसीलिये '**तत् एव अग्निः**' 'वही अग्नि है' अथवा '**अग्निः तत् एव**' अग्नि वही है। इन दोनों कथनोंसे एक ही भाव निकलता है।

इस रीतिसे अग्निके मन्त्र परमेश्वरका वर्णन करनेवाले समझे गये तो कोई आश्चर्य नहीं है।

परमेश्वर विश्वशासक है

परमेश्वर इस सपूर्ण विश्वका शासन करता है, वह बडा सामर्थ्यशाली है, शत्रुको दूर करता है, सज्जनोंका रक्षण करता है। उसका शासन निर्दोष, परिपूर्ण और सुयोग्य है। वह उत्पन्न करता, सरक्षण करता और दुष्टोंका विनाश करता है। उसका वर्णन इस तरह वेदमंत्रोंमें है—

स पर्यगात्, शुक्रं ... शुद्धं अपापविद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतो
अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

वा० यजु० ४०।८

'वह ईश्वर (पर्यगात्) चारो ओर व्यापता है, (शुक्र) वीर्यवान् है, (शुद्ध) शुद्ध निर्दोष है, (अ-पाप-विद्ध) वह पापसे विद्ध नहीं हुआ। वह (कविः) ज्ञानी दूरदर्शी अथवा क्रान्तदर्शी है। (मनीषी) मनको स्वाधीन रखनेवाला, (परिभूः) चारों ओर व्यापक तथा शत्रुका पराभव करनेवाला, (स्वयंभूः) स्वय अपनी शक्तिसे रहनेवाला है तथा वह (याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्) शाश्वत समयसे जो जैसा करना चाहिये वैसा ही वह कर रहा है।

ये परमेश्वरके गुण यजु० अ० ४० में तथा ईशोपनिषद्में वर्णन किये है। विश्वशासक, विश्वके सम्राट्के ये गुण हैं। विश्वके राजाके ये गुण हैं। ये गुण ऐसे हैं कि जो पृथ्वीपरके राजाको भी अपने अन्दर धारण करने चाहिये। राजा अपने राज्यमें अपनी शासनशक्तिसे (पर्यगात्) पहुचे, राज्यका कोई भाग उसकी शक्तिसे रिक्त न हो। जहा राजाका शासन न पहुचेगा वहा शत्रु घुसेगा और उपद्रव देगा। (शुक्र) वह राजाका शासन बलवान, सामर्थ्यवान् हो, निर्बल न हो, (शुद्धं) वह राज्यशासन शुद्ध पवित्र तथा निर्दोष हो, (अ-पाप-विद्धं) पापसे दूषित हुआ राज्यशासन न हो। वह राजा (कविः)

ज्ञानी, दूरदर्शी, क्रान्तदर्शी हो, (मनीषी) मननशील हो, मनको स्वाधीन रखनेवाला हो, (परिभूः) शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ हो तथा चारों ओर पहुंचनेवाला हो, (स्वयंभूः) अपनी शक्तिसे रहनेवाला, अपने राज्यशासनके लिये किसी दूसरेसे शक्ति प्राप्त न करे, क्योंकि दूसरेसे लायी शक्ति शाश्वत टिकनेवाली नहीं हो सकती। अपनी शक्ति अपने पास सतत रहेगी। इसी तरह वह राजा सदा जो कार्य जैसा करना चाहिये वैसा ही करता रहे।

ईश्वरका आदर्श

ये सब गुण परमात्माके हैं। पर वे ही राजाके गुण भी हैं। परमात्माके गुण ही राजाके गुण होते हैं। परमात्मा विश्वके विस्तृत राज्यका राज्यशासन करता है और राजा पृथ्वीपरके छोटे राज्यका शासन करता है। छोटे शासकके लिये बडे शासकका आदर्श रहना योग्य है।

इस तरह परमेश्वरके गुण आदर्श राजाके गुण हैं। पृथ्वीपरके राजा, मंत्री, राज्यके सब छोटे बडे अधिकारी, ये सबके सब परमेश्वरके गुण अपने सामने रखें तथा उन गुणोंको धारण करें और परमेश्वरका आदर्श अपने सामने रखकर, परमेश्वरके राज्यशासनके समान अपना राज्यशासन चलावें।

अग्निके वर्णनसे परमेश्वरका वर्णन होता है यह इससे पूर्व बताया है। परमेश्वरका वर्णन ही विश्वके सम्राट्का वर्णन है। अर्थात् वह राज्यशासकका वर्णन है। अतः अग्निके वर्णनमें हम राज्यशासकका भी वर्णन देख सकते हैं।

मनुष्य ईश्वरके गुण धारण करे

इसी तरह हरएक मनुष्य ब्राह्मीस्थिति प्राप्त करनेके लिये यहां इस जन्मको प्राप्त करके विश्वमें संचार कर रहा है। ब्राह्मी स्थितिमें ब्रह्मके गुण इसमें प्रकट होते हैं। जीवका शिव बनना है। शिव बननेपर क्या होगा वह ईश्वरके वर्णनसे विदित हो सकता है। अतः ज्ञानीके गुण भी अग्निके वर्णनमें हमें दीख सकते हैं।

अग्नि मार्गदर्शक है

अन्धेरेमें अग्नि अपने प्रकाशसे मार्ग बता सकता है और आगे जानेके लिये प्रवृत्ति करता है। अग्रतक ले जाता है। '**अग्निः कस्मात् अग्रणीर्भवति**' (निरुक्त.) अग्नि अग्रणी है। नेता है, अग्रतक ले जानेवाला है, अन्ततक पहुंचानेवाला है। प्राप्तव्य स्थानतक पहुंचाता है। यह नेता है अतः नेताके गुण भी हम अग्निमें देख सकते हैं। इस तरह अग्निके मंत्र अनेक प्रकारके बोध देते हैं। ये सब बोध हमें यहां देखने चाहिये। अर्थात् अग्निके मंत्र केवल 'आग' का ही वर्णन करते हैं ऐसा नहीं है, परंतु अग्नि देवताके मंत्र 'ईश्वर, अग्नि, अग्रणी, नेता, ज्ञानी, वीर, राजा, शासक' के गुणोंका दर्शन कराते हैं। ये भाव अब हम इन मंत्रोंमें देखेंगे।

यद्यपि अग्निमंत्रोंमें ईश्वर आदि अनेकोंके वर्णन हैं पर हम यहां प्रत्येकके वर्णन करके नहीं बतायेंगे। इसका कारण यह है कि इससे ग्रन्थका विस्तार बहुत बढेगा। इसलिये ये वर्णन अग्रणी ज्ञानी नेतामें किस तरह घटते हैं यही यहां बतायेंगे, शेष वर्णन पाठक स्वयं जान सकते हैं।

अग्नि " ज्ञानी नेता "

१ 'जातवेदाः (१९)-(**जातं जातं वेत्ति**) जो जो बनता है वह जानता है। विश्वमें इस जगत्‌में जो बना है वह जो जानता है। पदार्थोंकी विद्या जाननेवाला। (**जाताः वेदाः यस्मात्**) जिससे वेद प्रकट हुए, जिससे ज्ञान प्रकट होता है, जो ज्ञान देता है। ज्ञान देनेवाला, विद्याको प्रकट करनेवाला यह ज्ञानी है। (**जाते जाते विद्यते**) प्रत्येक पदार्थमें रहनेवाला, यह अर्थ आत्मावाचक है।

२ 'विश्व-वेदाः' (४), '**विश्व-विद्**'=' **विश्व-वेदाः=सर्वधनः**।'- सब धन जिसके पास है। सब वेद, सब ज्ञान जिसके पास है, सब जाननेवाला। '**विश्व-विदं-सर्वस्य जगतः वेदितार**।' सब जगत्‌को जाननेवाला, सर्व पदार्थोंका ज्ञान जिसको है।

३ कविः (२२; २९) = **क्रान्तदर्शी**। ज्ञानी, दूरदर्शी, जो दूसरोंको दीखता नहीं वह जिसको दीखता है। (**कविः मेधावी**) बुद्धिमान्।

४ चिकित्वान् (२०; २५), **प्रचेताः** (२२; **चिकित्वः** (३३); **चेकितानः** (२४)= (**चिकित्वान् ज्ञानवान्**) ज्ञानी। (**चेकितानः सर्वं जानानः**) सब ज्ञान जिसको है। (**प्रचेताः- प्रकृष्ट ज्ञानोपेतः**)= विशेष ज्ञानसे युक्त।

५ प्रजानन् (३३) = जाननेवाला, विशेष ज्ञानी। **विद्वान्** (३३)= ज्ञानी, विद्यावान्। **विप्रः कविशस्तः** (२४) (**ज्ञानी, कविभिः स्तुतः, ज्ञानिभिः, प्रशंसितः**)=

विशेष बुद्धिवान्, कवियोंके द्वारा प्रशंसित। अत्यन्त ज्ञानी।

६ **नराशंस** (२८), **ईड्य** (१६; २४) = **नरैः प्रशंसितः स्तुत्य** = जिसकी सब प्रशंसा करते है। जो प्रशंसा योग्य बुद्धिमान् है।

७ **दिवे दिवे जागृवद्भिः मनुष्येभिः ईड्यः** (१९)= प्रतिदिन जागनेवाले विद्वान् मनुष्योंके द्वारा जो प्रशंसित होता है। जिसकी सब विद्वान् वारवार प्रशसा करते हैं।

८ **नव्यसीं तव्यसीं वाचः मतिं धीतिं अग्नये भर।** (१)= नवीन शक्ति बढानेवाला, वार्णासे बना, मननीय धारकशक्ति बढानेवाला, स्तोत्र अग्निके लिये भर दे। स्तोत्रका गायन करो।

बलके लिये प्रसिद्ध

यह बलके लिये प्रसिद्ध है। इस विषयमे निम्नलिखित वर्णन देखनेयोग्य है—

१ **सहसः सूनुः** – बलका पुत्र। सहन सामर्थ्यका पुत्र। शत्रुका पराभव करनेके बलका पुत्र। पुत्रमें पिताका सामर्थ्य रहता है। इसलिये इसमें बल, शक्ति, सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेका बल है। इस तरह यह बलवान है।

२ **यविष्ठ्यः** (१४)– तरुण, तरुणके समान बलवान, उत्साही।

३ **अजिर** (१६)– (अ-जिर) जो जीर्ण या क्षीण नहीं है। सदा तरुण। **आशु-दूनः** (१६)– शीघ्र कार्य करनेवाला दूत, शीघ्रतासे कार्य समाप्त करनेवाला।

४ **वाजी अश्वः न** (२३)– घोडेके समान बलवान, वीर्यवान्।

५ **अमृतः** (३०)– जो मरियल नहीं है, सदा उत्साही।

६ **पुमान्** (३०)– पुरुषार्थी, प्रयत्नशील,

७ **सुवीरः** (२६)– उत्तम वीर, विशेष शूर, **पृतनाषाट्** (२६)– शत्रुकी सेनाका पराभव करनेवाला। **दस्यून् असहत्** (२६)– दुष्टोंका पराभव करता है।

८ **तरणिः** (३०)– तारक, तारण करनेवाला, दूसरोंका बचाव करनेवाला। **अक्षेमाणः** (३०)– क्षीणता जहा नहीं है। **वीळु-जम्भः** (३०)– बलवान जबडेवाला।

९ **सु-रणः** (३१)– उत्तम युद्ध करनेवाला। (**सुष्टु रणयति**)– उत्तम रीतिसे प्रवचन करनेवाला।

१० **योधः शत्रून् न** (५)– जैसा युद्ध करनेवाला उत्तम रातिसे लडता है वैसा यह लडनेवाला है।

११ **यः वराय न। मरुतांस्वन इव। सृष्टा सेना इव। यथा दिव्या अशनिः।** (५) इस वीरका कोई प्रतिबंध नहीं कर सकता। मरुतोंकी सेनाका जैसा स्वर होता है वैसा इसका आवाज है। शत्रुपर हमला करनेवाली सेनाका जैसा वेग होता है वैसा इसका वेग है। जैसी आकाशकी बिजली वेगसे गिरती है और नाश करती है, वैसा ही यह नाश करते हैं। ये वीर ऐसे शौर्यसे अपना कार्य करते हैं।

१२ **देवावीः** (२५)– (देव-अवी) देवोंका भी संरक्षण कर सकनेवाला, ज्ञानियोंको सुरक्षित जो रखता है। सज्जनोंका तारक।

१३ **असुरः** (२८), **असुरस्य जठरात् अजायत** (३१)– (असु-रः) असु नाम प्राणके बलसे जो बलवान है। यह वीर ऐसे असु-र के पेटसे हुआ उत्पन्न है। इस कारण यह बलवान है, क्योंकि पिताकी शक्ति पुत्रमें आती है।

१४ **अ-मित्र युधः** (३२)– जो मित्र नहीं हैं एसे शत्रुके साथ जो युद्ध करता है और उस शत्रुको परास्त करत है।

१५ **मरुतां इव प्रयाः** (३२)– मरुतोंके समान जो आक्रमण करता है। हमेशा विजयी रहता है।

१६ **अस्य समिधानस्य मज्मना शोचि द्यावापृथिवी प्र आरोचयत्** (२)– इसके प्रदीप्त होनेपर इसका प्रकाश इसके बलके कारण द्युलोक और भूमिके बीचमें फैलता रहता है।

१७ **अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि** (८)– प्रमाद न करता हुआ, प्रमाद न करनेवाले, कल्याणकारी और सुखदायी सरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर। प्रमाद न करना और कल्याण करनेवाले साधनोंसे सरक्षण करना इसका कार्य है।

१८ **अ-दब्धेभिः अदृपितेभि अनिमिषद्भिः नः पाहि** (८)– न दबनेवाले, पराभूत न होनेवाले और आलस्य जिनमें नहीं है, ऐसे सरक्षणोंके साधनोंसे हमारे पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण कर। संरक्षक और संरक्षणके साधन ऐसे अपने पास रहने चाहिये।

१९ **अद्रुहः निचिरासः क्षिपः अति ईर्ष्यावांसः अभ्यचिवन्** (१२)– आपसमें द्रोह न करनेवाले, निरन्तर

रहनेवाले, हिंसक शत्रुओंको परास्त करनेवाले तुझको विभुओंने प्राप्त किया। यहां '**स्निधः अति ईयिवान्**' शत्रुओंको परास्त करके दूर जानेवाला यह शौर्यका गुण बताया है। शत्रुओंको परास्त करना और उनके परे जाना यह गुण उसकी वीरता बतानेवाला है।

१० ध्रुवं अथाः (३३)— निश्चित स्थिररूपसे जानेवाला, निश्चित स्थानपर पहुंचनेवाला। स्थान और समयके विषयमें जिसकी अचूक निश्चितता है।

ये गुण, शौर्य, वीर्य, धैर्य, युद्धकौशल्य, सामर्थ्य, बल, ओज आदिके दर्शक है। ये जैसे अग्निमें ऋषिने देखे, वैसे ही राजा, राष्ट्रशासक, नेता आदिमें भी देखे हैं। इस तरह अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषियोंने किया, वही सब पाठकोंको करना चाहिये।

अग्नि लकडियां जलाता है, शासक और नेता शत्रुका वैसा नाश करे। इस तरह सब गुण देखनेयोग्य हैं। कई गुण साक्षात् देखे जा सकते है और कई कल्पनासे विचार करके जाने जा सकते हैं।

इनमेंसे कई गुण राष्ट्रशासक, समाज नेतामें ही विशेष रीतिसे वे प्रत्यक्ष दीख सकते हैं। यही कविका उद्देश्य भी है। मंत्रोंमें वही रहस्यमय अर्थ देखना चाहिये। देवतामें जो गुण हैं या देवताके वर्णनके स्तोत्रमें जो गुण हैं वे मनुष्योंमें उतरने चाहिये। मनुष्यका कार्यक्षेत्र जितना छोटा या बडा हो, उतने क्षेत्रमें वे गुण देखनेवालेको दीख सकते हैं। राष्ट्रशासकके गुण राष्ट्रभरमें, नेतामें तथा अन्य मानवोंमें वे ही गुण छोटे या बडे कार्यक्षेत्रमें देखे जा सकते हैं।

इस तरह मंत्रोंसे बोध लेना उचित है।

अन्य स्पृहणीय गुण

अग्निमें और भी प्रशंसनीय गुण हैं, उनका अब विचार करते हैं—

१ अपां न-पात् (१, ९)- जलोंको न गिरानेवाला यह इस पदका शब्दार्थ है। ' जल ' या ' आप ' का अर्थ 'जीवन' भी है, ' कर्म ' यह भी इसका अर्थ है। जीवनको न गिरानेवाला, जीवनमें गिरानेवाला कर्म न करनेवाला, कर्मोको न गिरानेवाला यह भी इसका भाव है। '**आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।** (ऐ० उ०) आप् रेतका रूप धारण करके शिश्नमें प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् शरीरमें 'रेत ' ही ' आप् ' है। ' आप् ' को अर्थात् रेतको न गिरानेवाला यह इसका अर्थ अध्यात्ममें है। रेतको गिरानेका अर्थ अकालमें वीर्यपात करना, अयोग्य क्षेत्रमें वीर्यपात करना, यह अयोग्य है। वह हानिकारक है। यह करना नहीं चाहिये। यह बोध इस पदसे लेना योग्य है। वीर्य रक्षण करनेवाला, तथा ऊर्ध्वरेता बनानेवाला यह इसका भाव है।

' आप् ' पदके पर्याय निघण्टुमें ये दिये है- " (रेतः) वीर्य, जन्म, (सहः) सामर्थ्य, (ओज.) शारीरिक बल, सुख, (क्षत्र) क्षात्रतेज, यश, अन्न, पवित्र, (वपु) शरीर, (शुक्रं) बल, तेज " इनको न गिरानेवाला, इनमें गिरावट न करनेवाला। इनका अधःपात न करनेवाला। इनका अधःपात होनेसे मनुष्य गिरता है। मनुष्यको कष्ट होते है, मानवकी मानवता कम होती है। इसलिये यह गुण जो अग्निमें हैं वे मानवोंमें रहने और बढने चाहिये।

२ होता (१)- दाता, आदाता, (आह्वाता देवान्) विभुओंको बुलानेवाला। विभुओंको बुलाकर अपने साथ लाता, रखता है। यह ज्ञानियोंमें रहता है।

३ ऋत्वियः (१)- ऋतुके अनुकूल रहनेवाला, ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाला, समयके लिये योग कर्म करनेवाला।

४ प्रियः- सबको प्रिय, गुणी होनेके कारण सबको प्रिय है। शुभ गुणोंसे युक्त होनेके कारण सबको प्रिय होना स्वाभाविक है।

५ अग्निः- अग्रणी, अग्नि अन्धेरेमें प्रकाश बताता है और योग्य मार्ग बताकर जहां जाना हो वहां पहुंचा देता है। यह अग्रणीका कार्य है। अनुयायियोंको सत्य मार्गसे चलाना अग्रणीका कार्य है।

६ वसुभिः सह पृथिव्यां न्यसीदत्- वसु उनको कहते हैं कि जो मानवोंके निवासके साधनरूप होते हैं। जैसे पृथ्वी, आप, वायु आदि हैं। इनके साथ यह पृथिवीमें रहता है। इस तरह नेता निवासक साधनोंके साथ यहां रहे और अनुयायियोंका निवास सुखमय करे। पृथिवीपर रहकर पृथिवीपरका निवास सुखमय करना चाहिये।

७ एकः वस्वः राजति (४)- वह एक ही धनोंपर राज्य करता है। अपने पास जो वसु-धन-है उसपर अपना प्रभुत्व रहना आवश्यक है, नहीं तो वह दूसरेके हाथमें जायगा।

८ चोदः धियः सातये कृवित् तुतुज्यात् (६)- सत्कर्मकी प्रेरणा करनेवाला यह कर्मोकी और बुद्धियोंकी उन्नतिके

लिये अनेकवार सन्मार्गसे जानेकी प्रेरणा करे। सन्मार्गसे चलनेकी प्रेरणा करनी चाहिये। तथा शुभकर्मोंकी और कर्मप्रेरक बुद्धिकी उन्नति हो इसलिये यह प्रेरणा होनी चाहिये।

९ शुचि-प्रतीकं गृणे (६)- शुचिताका, पवित्रताका जो प्रतीक हो उसकी प्रशंसा हो। अपवित्रकी कभी प्रशंसा नहीं होनी चाहिये।

१० ऋतस्य धूर्षदः (७)- ऋतके धुरामें रहनेवाला। ' ऋत ' का अर्थ ' सरलता, यज्ञ, सत्य, अकुटिलता ' आदि है। इनके आचरण करनेके समयमें जो अग्रभागमें रहता है।

११ अ-क्र -- शत्रुके द्वारा जिसपर आघात नहीं हो सकता। शत्रुका जिसको भय नहीं है।

१२ विदथेषु दीद्यत्- संग्रामोंमें चमकनेवाला, यज्ञोंमें प्रतिष्ठा पानेवाला, सभाओंमें जो शोभता है।

१३ शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते- निर्मल बुद्धिको जो प्रयुक्त करता है। शुद्ध बुद्धिसे जो कर्म करता है।

१४ सुभगः सुदीदितिः सुप्रतूर्तिः अनेहाः (९)- उत्तम भाग्यवान् तेजस्वी और उत्तम रीतिसे तारण करनेवाला और उपद्रवरहित जो होता है। दूसरोंका, अनुयायियोंका उत्तम रीतिसे तारण जो करता है।

१५देवः (९)-(**देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो वा भवतीति**। (निरु.) देव उसको कहते हैं कि जो दाता है, प्रकाशता है तथा द्युस्थानमें जो है। ' **दिवु-क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार- द्युति-स्तुति- मोद- मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु**, जो क्रीडा अर्थात् मर्दानी खेल खेलनेमें कुशल है, जो व्यवहार करता है, जो विजिगीषु है, जो प्रकाशता है, जो स्तुतिके योग्य है, जो आनन्द प्रसन्न रहता है, जो अपने सामर्थ्यका अभिमान करता है, जो स्वप्न निद्रापर काबू रखता है, जो प्रगतिशील है वह देव कहलाता है। देव अनेक हैं। शरीरमें इंद्रियाँ देव हैं, राष्ट्रमें ज्ञानी वीर व्यवहारकर्ता और कर्ममें कुशल देव है और विश्वमें अग्नि, वायु, रवि आदि देव हैं। इस तरह देवत्वका विचार अत्यंत विस्तृत है। यहां संक्षेपसे दर्शाया है। यह अग्नि देव है, विद्वान भी देव हैं, राजा राजपुरुष भी देव हैं।

१६ दूरे सन् इह अभवः (१०)-दूर होकर भी यहां पास होता है। दूर भी है और पास भी है। अर्थात् चारों ओर है।

१७ सुमना असि (११)- उत्तम मनवाला है, उत्तम मननशील है।

१८ येषां सख्ये क्षितः असि, तृष्टं अति यथाक्षिथ (११)- जिनका मित्र बनकर रहता है, उसकी तृषा दूर करता है, उसका हित करता है। मित्रका यही कर्म है।

१९ विश्वान् यज्ञान् अभिपासि (१४)-सब यज्ञोंका संरक्षण करता है। यज्ञोंका संरक्षण होना चाहिये क्योंकि यज्ञका बडा भारी महत्त्वपूर्ण मुख्य कार्यक्रम है। **(यज्-देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु)** यज्ञमें ये तीन कर्म प्रमुखतया होते हैं। (१) विबुधों, ज्ञानियोंका सत्कार, (२) समाजका संगतिकरण अर्थात् संगठन और (३) न्यूनताकी पूर्ति करनेके लिये दान। ज्ञान, वीरता, धन और कर्मकुशलकी न्यूनता समाजमें होती है। यह न्यूनता समाजमें क्लेश उत्पन्न करती है। इसको दूर करनेके लिये दान देना चाहिए। ज्ञान, दान, बल बढानेके लिये, धन संवर्धन करनेके लिये तथा कर्मकी कुशलता बढानेके लिये दान देकर ये चारों प्रकारकी न्यूनताए समाजसे दूर करनी चाहिये।

२० तव भद्रं दंसना (१५)- तुम्हारा कर्म कल्याण करनेवाला है। कर्म कल्याण करनेवाला ही करना चाहिये।

२१ पाकाय छदयति- परिपक्व बननेके लिये प्रेरित करता है। अपक्वको परिपक्व बनाता है।

२२ स्वध्वरं पावकशोचिषं अजिरं प्रत्नं ईड्यं सपर्यत (१६)- हिंसारहित उत्तम पवित्र करनेवाला प्रकाश है जिसका ऐसे, जीर्ण न होनेवाले, पुरातन प्रशंसनीय देवकी पूजा करो। यह **' स्वध्वर '** पद महत्त्वका है। **' सु+अ+ध्वर '** जिसमें हिंसा किसी तरह नहीं है ऐसा कर्म करनेवाला प्रशंसनीय है। हिंसा करनेवाला प्रशंसाके योग्य नहीं है। **' पावक-शोचीः '**- पवित्रता करनेवाला जिसका प्रकाश है। जिसके पास पवित्रता ही पवित्रता है। वह प्रशंसनीय है।

२३ वृषणं जजान (२०)- बलवान पुत्रको उत्पन्न किया। पुत्र बलवान हो ऐसा प्रयत्न मातापिताको करना चाहिये।

२४ अरुषस्तूपः अस्य रुशत् पाजः पुत्रः वयुने अजनिष्ट (२०)- (अ-रुष -स्तूपः) अक्रोध युक्त तथा तेजस्वी, तथा जिसका तेजस्वी प्रकाश है ऐसा पुत्र उत्पत्ति होनेके अंगमेंसे उत्पन्न हुआ। इसमें पुत्र कैसा होना चाहिये यह बताया है। पुत्र (अ-रुषः) क्रोधरहित हो, (स्तूपः)

तेजःपुञ्ज हो, उसकी चमक तेजस्वी हो। (वपुषे अगं) अंगसे उत्पन्न हो। अर्थात् योग्य रीतिसे उत्पन्न हो।

१५ सुप्रतीकः (२२)–उत्तम नमूनेदार, उत्तम आदर्शवान्, **(यज्ञस्य केतुः)** यज्ञका ध्वज जैसा, यज्ञको प्रकट करनेवाला यज्ञरूप जीवनवाला, **(प्रथमः सुशेवः)** प्रथम सेवा करने-योग्य ऐसा पुत्र हो।

१६ आश्विनः चित्रः यामन् न (२३)- अश्विदेवोंके सुन्दर रथके समान बलशाली पुत्र हो। रथ जैसा सुदृढ होता है वैसा पुत्र सुदृढ हो।

१७ स्वध्वरा कृणु । (२९)- हिंसारहित उत्तम कर्म कर। हिंसा युक्त कर्म न कर।

१८ देवान् देवयते यज (२९)- देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके हितके लिये देवोंके लिये यज्ञ कर।

इस तरह अग्निके वर्णन करनेमें मनुष्यकी उन्नतिके सूचक पदों और वाक्यों द्वारा सामान्य उपदेश है। यह उपदेश जैसा अग्निमें घट सकता है, उसी तरह राजा, राज्याधिकारी, सर्व-साधारण मनुष्यके लिये अपनी उन्नतिके सुयोग्य कर्म करनेके उपदेश हैं।

'अग्नि' परमेश्वर, परब्रह्म, परमात्माका वाचक है। इसके प्रमाण पूर्वस्थानमें दिये ही हैं। इस भावको लेनेसे अग्निके वर्णन परमेश्वरके वर्णन हो सकते हैं। अर्थात् विश्वके सम्राट्के ये वर्णन हो सकते हैं और जो वर्णन विश्वशासकके होंगे वे पृथ्वी-परके राजाके भी होते हैं।

यहां अरणियोंके घर्षणसे अग्निरूप पुत्र उत्पन्न होनेका वर्णन है। उत्तर अरणि और अधरारणि ऐसी दो अरणियोंके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है। द्यौ और पृथिवीके बीचमेंसे सूर्य उत्पन्न होता है। उत्तर ध्रुवके स्थानमें चक्रवत् द्यावा पृथिवी घूमती हैं और उनके बीचसे सूर्यकी उत्पत्ति ठीक अरणियोंसे उत्पन्न होने-वाले अग्निके समान ही होती है। मातापितासे बालक होता है यह भी वैसी ही उत्पत्ति है। प्रजाके दो पक्षोंके संघर्षसे-चुना-वके संघर्षसे राजाकी उत्पत्ति होती है। यह भी आलंकारिक रीतिसे वैसी ही उत्पत्ति है।

इस तरह यह अग्निकी उत्पत्ति कहा कैसी है यह विचार करके जान सकते है और सर्वत्र अग्निके गुण छोटे और बडे कार्य-क्षेत्रके अनुसार ये गुण सर्वत्र देखे जाते हैं।

पाठक विशेष कर राजा, नेता तथा मनुष्यमें इन गुणोंको घटाकर बोध प्राप्त करें। इसका थोडा वर्णन स्थान स्थानपर बताया ही है।

अग्निका वर्णन केवल आगका ही वर्णन नहीं है। अग्निके गुण आदर्श देवके गुण हैं। वह आदर्श राजा, नेता, अग्रणी आदिमें देखा जाता है और मंत्रका रहस्यार्थ इस रीतिसे जाना जाता है। अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन करना चाहिये वह इस रीतिसे करना चाहिये। ऐसा करनेसे वेदमंत्रके वर्णनसे दैनिक व्यवहार-का बोध प्राप्त हो सकता है। यह बोध विचारकी दृष्टिसे देखा जाता है। यही रहस्यार्थ है और यही वेदका मुख्य ज्ञान है।

अग्नि-मन्त्र चरणसूची।

२२ अग्निं नरो जनयता सुशेवम्
१३ अग्निमित्था तिरोहितं
४ अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे
१८ अग्नि मन्याम पूर्वथा
७ अग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते
५ अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति
२५ अग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः
३ अग्ने रेजन्ते असस्न्तो अजराः
२९ अग्ने स्वध्वरा कृणु
२१ अग्ने हव्याय वोळ्हवे
३० अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो

११ अति तृष्टं ववक्षिथा
२७ अथा नो वर्धया गिरः
११ अथैव सुमना असि
८ अदब्धेभिरदृपितेभिः इष्टे
८ अनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः
१२ अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहो
९ अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं
१ अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो
८ अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिः अग्ने
१२ अप्सु सिंहमिव श्रितं
३२ अमित्रायुधो मरुतामिव

२६ अयमग्निः पृतनाषाट्
२७ अयं ते योनिर्ऋत्वियो
१९ अरण्योर्निहितो जातवेदा
२० अरुषस्तूपो रुशदस्य
२३ अश्वो न वाज्यरुषो
१८ अस्ति प्रजननं कृतं
१८ अस्तीदमधिमन्थनं
२ अस्य क्रत्वा समिधानस्य
३ अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानव
२६ अलेधन्त इतन वाज
३० असेमाणं तरणिं वीळु

१६ आजुह्वोता स्वध्वरं
१७ आदिद्धोतारं न्यसादयन्त
२ आविरग्निरभवन्मातरिश्वने
१६ आशुं दूतमजिरं
७ इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यत्
२१ इळायाः त्वापदे वयं नाभा
२० इळायास्पुत्रो वयुने
१२ ईयिवांसमति स्रिधः
२० उत्तानायामव भरा चिकित्वान्
१२ एक एको दमे अग्नि
१८ एता विश्पत्नीमा भरा
१३ ऐनं नयन् मातरिश्वा
१७ औक्षन् घृतैरस्तृणन्
१० कायमानो वना त्वं
६ कुविन्नो अग्निरुचथस्य
२६ कृणोत धूमं वृषणं
१९ गर्भ इव सुधितो गर्भिणीभिः
७ घृतप्रतीक व ऋतस्य
२३ चित्रो न यामन्नश्विनो
६ चोदः कुवित्तुतुज्यात् सातये
२१ जातवेदो निधीमहि
२८ जातो अग्नी रोचते चेकितानो
२७ तं जानन्नग्न आसीदा
१५ तद्भद्रं तव दंसना
१४ तं त्वा मर्ता अगृभ्णत
२८ तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो
१४ तव क्रत्वा यविष्ठ्य
१७ त्रिंशच्च देवा नव चा
१७ त्रीणि शता त्री सहस्रो
१५ त्वा यदग्ने पशव. समासते
३० दश स्वसारो अग्रुवः
१९ दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिः
२९ देवान् देवयते यज
२५ देवावीर्देवान् हविषा
१३ देवेभ्यो मथितं परि
१४ देवेभ्यो हव्यवाहन
९ देवं मर्तास ऊतये
३२ द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास
३३ ध्रुवमया ध्रुवमुता शमिष्ठा
१० न तत्ते अग्ने प्रमृषे
३१ न निमिषति सुरणो
५ न यो वराय मरुता
२८ नराशंसो भवति यत्
२१ नाभा पृथिव्या अधि
४ नाभा पृथिव्या भुवनस्य
२३ परि तृणक्त्यश्मनस्तृणा
१५ पाकाय चिच्छदयति
३० पुमांसं जातमभिसं
२२ प्रचेतसममृतं सुप्रतीकं
३३ प्रजानन् विद्वा उपयोहि
१ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिं
३२ प्रथमजा ब्रह्मणो विश्व
२ प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत्
११ प्र प्रान्ये यन्ति पर्जन्य
३१ प्र सप्तहोता सनकाद
३ भ्रातृव्यक्षसो अत्यक्तुर्न
२२ मन्थता नरः कवि
२८ मातरिश्वा यदमिमीत
३१ मातुरुपस्थे यदशोचदूध
४ य एको वस्वो वरुणो न
२२ यज्ञस्य केतुं प्रथमं
२७ यतो जातो अरोचथाः
३३ यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे
३१ यदसुरस्य जठरादजायत
२३ यदी मन्थन्ति बाहुभिः
१० यद्दूरे सन्निहाभवः
१० यन्मातुरजनयः
२४ यं देवास ईड्यं विश्वविद
४ यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं
२६ येन देवासो असहन्त
११ येषां सख्ये असि श्रितः
५ योधो न शत्रून्त्सवना
६ वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्
१ वाचः मतिं सहसः सूनवे भरे
२४ वाजी विप्रः कविशस्तः
२८ वातस्य सर्गो अभवत्
१४ विश्वान् यदयज्ञो अभि
१२ शश्वतीरति सश्वतः
८ शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि
१६ शीरं पावकशोचिषं
७ शुक्रवर्णामुदु नो यंसते
६ शुचि प्रतीकं तमया धिया
१६ श्रुष्टी देवं सपर्यत
९ सखायस्त्वा ववृमहे
२ स जायमानः परमे व्योमन्
२० सद्यः प्रवीता वृषणं
१५ समिद्धमपि शर्वरे
१३ ससृवांसमिव त्मना
२५ सादया यज्ञं सुकृतस्य
२५ सीद होतः स्व उ लोके
२९ सुनिधा निहितः कविः
२९ सुनिर्मथा निर्मथितः
९ सुप्रतूर्तिमनेहसम्
३ सुसंदृशः सुप्रतीकस्य
५ सेनेव सृष्टा दिव्या
१९ हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः
२४ हव्यवाहमदधुरध्वरेषु
१ होता पृथिव्या न्यसीदद्
३३ होताश्चिकित्वोऽवृणीमहीह

अर्थात् मैथुन द्वारा सृष्टि उत्पन्न करनेवाली (विजायते) उत्पन्न होती है । (सा) वह सृष्टि (रिफती) कामचेष्टासे आपसमें हिंसा करती हुई (रुशती) क्रोध करती हुई (पशून्) पश्यती पशु जीवमात्रका (क्षिणाति) पशुधर्मवाली होकर नाश करती है ।

तुलना— गीतामें सप्तर्षि, सनक, सनन्दनादि चार, तथा मनु आदि प्रथम सृष्टि मानसिक हुई है । वेदमें भी आदि मानसिक सृष्टि एक एक करके विना मातापिताके उत्पन्न हुई । उत्पन्न होनेवाले २५ वर्षके युवक थे । जैसे वसिष्ठादि सप्तर्षि उत्पन्न हुए । पुन मैथुनी सृष्टि होने लगी । जो सृष्टि कामचेष्टाके अधिक हो जानेसे एक दूसरेको मारती थी । जो नियम आजतक चल रहा है वह यहां कहा है ।

एतां विभूतिं योग च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नाऽत्र संशयः ॥ भग० १०।७

अर्थ- एतामिति= (य) जो ज्ञानी मुमुक्षु पुरुष (मम) मुझ परमात्माकी (एताम्) पूर्वप्रतिपादित विभूति अर्थात् विविधाकार सर्वात्मस्वरूपको, महत्त्वविस्तारको (च) और (योगम्) सृष्टिस्थितिसंहार-सामर्थ्यको तथा प्रवेश-नियमनादि सामर्थ्यको (तत्त्वत) यथार्थतासे (वेत्ति) जानता है । (स.) वह ज्ञानी पुरुष (अविकम्पेन) विकल्पसे रहित अर्थात् स्थित (योगेन) चित्तवृत्तिनिरोधक योगसंबंधसे अर्थात् मेरी उपासनाके संबंधसे (युज्यते) देहादिमें आत्मभावको छोडकर ब्रह्मात्मैकत्वभावसे जुड जाता है (अत्र संशय न) इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७ ॥

वेदगीता (मंत्र)

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥

ऋ अष्ट १ अध्या. १ व, १५ म. ९, अथ का २० सू ६० म ६

अर्थ- हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् (ते) तुझ परमात्माकी (विभूतय·) विविधाकार सर्वात्मस्वरूप महाशक्तिशाली पदार्थ अर्थात् ऐश्वर्यविशेष (एवा हि) इस प्रकार (मावते) मुक्त जैसे (दाशुषे) सब पदार्थोंको आपके अर्पण करनेवाले यजमान अर्थात् मुमुक्षुभक्तके लिये (सद्यः चित्) सर्वदा ही (ऊतयः) संसाररूपी समुद्रसे बचाता (संति) है ।

तुलना- भगवद्गीतामें परमात्माके विविधस्वरूप, ऐश्वर्य विस्तारको जो सम्यक्तया जान लेता है उसी मुमुक्षुकी चित्तवृत्तिका योग परमात्माके साथ अविचलभावसे हो जाता है । अर्थात् उसकी चित्तवृत्ति सांसारिक विकृतिशील पदार्थोंके स्नेहको छोडकर परमात्मभक्तिमें पूर्णतया लग जाती है । वेदमें भी यही बताया है कि परमात्मा ही सारे जगतमें अपने स्वरूपको भिन्न भिन्न शक्तियोंसे युक्त करके, देहात्मभावको छोडकर अपने आपको परमात्माके समर्पण करनेवाले अपने भक्तोंका रक्षा भिन्न भिन्न समयमें उन शक्तिशाली विभूतियोंसे करता है ।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ भ० १०।८

अर्थ- (अहं) मैं परमात्मा ही (सर्वस्य) दृष्टिगोचर होते हुए सारे जगत्का (प्रभव) उत्पत्तिस्थान अर्थात् उपादानकारण हूं (मत्त) मुझ परमात्मासे ही (सर्वम्) सब वस्तु अपने अपने कार्यमें (प्रवर्तते) प्रवृत्त होती है । अर्थात् पदार्थोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति मेरे द्वारा सिद्ध होती है । (बुधाः) ज्ञानी लोग (इति मत्वा) सबका उपादानकारण परमेश्वर है, यह मानकर (भावसमन्विताः) ब्रह्मात्मभाव हुए हुए (मां) मुझ परमेश्वरको (भजन्ति) भजते हैं अर्थात् सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

वेदगीता (मंत्र)

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहं ऋतूँर-
जनयं सप्त सिन्धून् । अहं सत्यमनृतं
यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥

अथर्व० ६।६१।३

अर्थ- (अहम) मैं=परमात्माने (पृथिवीं उत द्यां) पृथिवी और आकाशको (जजान) उत्पन्न किया है (अहं) मैं=परमात्माने ही (सप्तऋतून्) सात ऋतुओंको अर्थात् समयको तथा

---

(१) मावते- वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छंदसि सादृश्य उपसंख्यानम्, इत्यस्मच्छब्दात् वतुप् । " मपर्यन्तस्य प्रत्ययोत्तरपदयोश्च " इति मादेशः । अद् शब्देन सह " अतोगुणे " इति पररूपत्वम् " दृग्दृशवतुष्विल्यनुवृत्ता वा सर्वनाम्न " इति दकारस्य आकारः सवर्ण दीर्घत्वम् । (२) सद्यः=समाने यवि इत्यर्थे सद्यः " परुत्परार्यैषमः " इत्यादिना निपातितम् । (३) दाशुषे=दाशृ=दाने " दाश्वान्साह्वान्मीढ्वाश्च " इति निपातनात् " कसाविडाभावो द्विर्वचनाभावश्च " चतुर्थ्येक वचने यश्चिभं, इति भसंज्ञया " वसोः संप्रसारणम् " इति संप्रसारणम् । वकारस्याकारः परपूर्वत्वम् " शासिवसिघसीनां च " इति षत्वम् ।

(सप्त सिन्धून्) सातों समुद्रोंको (अजनयम्) उत्पन्न किया अर्थात् सारे संसारको उत्पन्न किया है। अतः जगत्का उपादान-कारण मैं ही हूं । (अहं) मैं परमात्मा ही (यत् सत्यं यत् अनृतम्) संसारमें जो सत्य पदार्थ है या जो असत्य है (वदामि) वेदमें प्रतिपाद्य कह देता हूँ। वेदमें स्पष्ट बताया गया है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। सत्य बोलनेका क्या फल है और असत्य बोलनेका क्या फल है, यह स्पष्ट वेदद्वारा कहता हूं । (अग्नी-षोमो सखायौ अजुषे) मैं ही जीवात्मा और परमात्मा समान-रूप एकरूपसे जोड देता हूं। अर्थात् जीवात्मा और मैं परमात्मा जब एकरूप हो जाते हैं, वह भी मेरा कार्य है।

यद्वा–

वेदगीता (मंत्र)

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्य-वराण्यस्मात् । इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ।।

ऋ. म. ८ सू. ९६ मं. ६

अर्थ– (यः) जिस परमात्माने (इमा) इन पञ्चभूतोंको (जजान) उत्पन्न किया। (अस्मात्) इस परमात्मासे (विश्वा अवराणि) त्रिकालमें उत्पन्न होनेवाली सब वस्तुएं (जातानि) प्रकट हुईं। (त उ) हम मुमुक्षु जीव उस परमात्माकी ही स्तुति करें। हम मुमुक्षु भक्तजन (गीर्भि.) स्तुतिमयी वाणि-योंसे (इन्द्रेण मित्र दिधिषेम) परमैश्वर्यवान् परमात्माके साथ मित्रताको धारण करें, यद्वा हम इन्द्र अर्थात् परमात्माके मित्र बनें, संसारके मित्र न बनें। इसलिये (नमोभिः) हम अपने किये हुए नमस्कारों द्वारा अर्थात् नम्रतासे (वृषभं) दयाकी वृष्टि करनेवाले सर्वोत्तममें (उपोविशेम) प्रवेश कर जावें अर्थात् एक स्वरूप हो जावें ॥ ६ ॥ यथा तंत्रान्तरमें भी कहा है—

" स ऐक्षत लोकान्नु सृजा स इमाल्लोकानसृजत । "

ऐतरेयोप० खं० १, श्रु० १, २

अन्यत्र भी कहा है।

मय्येव जातं सकलं मय्येव प्रतिष्ठितम् ।

यद्वा—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म० ॥

तुलना– गीतामें कहा है, ईश्वर सबको उत्पन्न करता है, उसकी प्रेरणासे ही सब वस्तुएं अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाती हैं और नियमानुसार कार्य करती रहती हैं। ज्ञानी यही जानकर अनन्यभक्तिसे परमेश्वरका भजन करते हैं। इसी अनन्य भक्ति द्वारा उनका चित्त ईश्वरमें लगता है। ईश्वर ही उनका योगक्षेम स्वयं करता है।

वेदमें भी यही भाव है – परमेश्वरने ही इस जगत्को उत्पन्न किया, सारे पदार्थोंको उत्पन्न करके उनमें कार्यकर्तृत्वक्षमता धारण की, जिससे सूर्यचंद्रादि ग्रहगण तथा स्थावर जंगम सब वस्तुएं अपने अपने नियमानुसार अपना अपना कार्य कर रही हैं ऐसा जो पुरुष जानता है वही अपनी स्तुतिमयी वाणियोंद्वारा परमा-त्माको प्रसन्न करता है। अपने शुद्धचित्त द्वारा ब्रह्मात्मैकत्वका ज्ञान प्राप्त करके परमात्मामें वास करता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा: बोधयन्त: परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

भ. गी १०।९

अर्थ – (मां बोधयन्तः) शिष्योंको शास्त्रके सत्य अर्थद्वारा मुझ परमेश्वरको जतलाते हुए तथा (परस्परं मिथः) स्वस्वानुभव (कथयन्त:) कहते हुए (मच्चित्ताः) मुझ परमात्मामें मन लगाये हुए (मद्गतप्राणा) मेरे तत्त्वके प्रतिपादक वाक्योंके उच्चारण करनेमें तथा उस वास्तविक अर्थके सुननेमें और निश्चित अर्थके विचार करनेमें वागादीन्द्रियोंको भगवत्परक करते हुए भक्तजन (नित्यं) सदा (तुष्यन्ति) प्रसन्न होते हैं और (रम-न्ति) मेरे विचारोंमें ही रमण करते हैं।

वेदगीता (मन्त्र)

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने । सुनीथासः सुदानवोऽंहोश्चिदुरुचक्रयः ॥

ऋ. मं. ५, सू. ६७, मं. ४

अर्थ – (ते हि) निश्चयसे वह मुमुक्षुजन भगवद्भक्त (सत्याः) सत्यस्वरूप परमात्म स्थितिवाले, यद्वा सर्वदा सर्वत्र ब्रह्मसाक्षा-त्कार होनेसे सत्यभाषी (ऋतस्पृशः) ब्रह्मको वागादि द्वारा स्पर्श करनेवाले, अर्थात् वाणी द्वारा परमात्मस्तुति करते हुए यद्वा 'ऋत' नाम यज्ञका है। अतः नित्य सत्संगतिरूपी यज्ञमें लगे हुए

(१) दिधिषेम– दिधिष धारणे इति केचिद्वदन्ति यद्वा धिष् शब्दे औहोत्यादिकः ।

(ऋतावानः) सारे जगत्को ब्रह्मस्वरूप देखते हुए (जने जने सुदानवः) प्रत्येक मनुष्यको भगवद्भक्तिका सुन्दर दान देनेवाले अतः (सुनीथासः) "सुनीथस्य प्रशस्ये पाठः" निघं० ३।८ अत्यन्त शुद्धचित्त होनेसे श्रेष्ठ भक्त (अहोः चित्) पापीसे पापीको अर्थात् महापातकीको भी (उरुचक्रयः) बहुत उत्तमसे उत्तम कर्म करानेवाले ब्रह्मानन्दमें प्रसन्न रहते हुए ब्रह्मरसमें ही रमण करते रहते हैं ॥ ४ ॥

तुलना – गीतामें ईश्वरमें अपने चित्तको स्थिर रखनेवाले, अपने जीवनको भी ईश्वरार्पण करनेवाले, ईश्वरप्राप्तिका ज्ञान दूसरे जिज्ञासुओंको बताते हुए, आपसमें ईश्वरके गुणोंका वर्णन करते हुए सदा संतुष्ट रहते हैं और विश्वरूप ईश्वरमें ही रमण करते रहते हैं, ऐसा कहा है। वेदमें भी यही कहा है- जो भक्तजन सत्यवक्ता, सदा ब्रह्ममें रमण करनेवाले, नित्य सत्संगतिरूपी यज्ञमें वास करनेवाले, प्रत्येक मनुष्यको परमात्मभक्तिका दान देते हैं और पापीसे पापी मनुष्यको भी भगवद्भक्तिका उपदेश देते हैं वही श्रेष्ठ पुरुष हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

भग० १०।१०

अर्थ – (सततयुक्तानाम्) सर्वदा अखण्डैकरस आनन्द-स्वरूप परमात्मज्ञान संलग्न (प्रीतिपूर्वकं भजताम्) प्रीतिपूर्वक पराभक्तिसे मेरा भजन करनेवाले (तेषाम्) उन अपने प्रेमी भक्तोंको प्रीतिपूर्वक (त बुद्धियोगं ददामि) 'भक्तास्तेऽतीव मे प्रियः' इस अपने वचनानुसार मै परमात्मा दयाके रससे आर्द्रताके साथ अपने स्वरूप– ज्ञानकारक बुद्धि– संबंधको देता हूँ। (येन) जिस बुद्धियोगसे (ते) वह मेरे प्रिय भक्तजन (मां उपयान्ति) मुझको प्राप्त होते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥ १० ॥

वेदगीता (मंत्र)

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं
मित्रा देवजनाः यूयम् इमं संग्रामं संजित्यं
यथालोकं वितिष्ठध्वम् ॥

अथ. कां ११।९।२६

अर्थ – (मित्राः) किसीके साथ द्वेष न रखनेवाले सबको एकरूपतासे मित्रदृष्टिसे देखनेवाले (देवजनाः यूयं) परमात्म-भक्त तुम (तेषां सर्वेषां ईशानाः) उन सब इन्द्रियोंपर अथवा कामक्रोधादि शत्रुओंपर प्रभुत्व डालते हुए (उत्तिष्ठत) परमात्म भजन द्वारा मुक्तिधाम जानेके लिये खडे हो जाओ ! तुम भगवद्भक्त (इमं) इस (संग्रामं) संसारयुद्धको (संजित्य) जीतकर अर्थात् अनात्ममें आत्मबुद्धि त्यागकर (यथा लोकं) अपनी अपनी भक्तिके अनुसार अपने अपने लोकमें अर्थात् मुक्तिधाममें (वितिष्ठध्वम्) स्थित होजाओ ॥ २६ ॥

तुलना – गीतामें कहा है, जो भक्त नित्य ही परमात्म-भक्तिमें जुडेंगे और परमात्माकी प्रीति करेंगे। दयालु परमात्मा उन्हें सद्बुद्धिका संबध देगा; जिस सद्बुद्धि द्वारा वे भक्त ईश्वरसे दूर कदापि न होंगे।

वेदमें भी यही कहा है। जो जीव सारे जगत्को मित्रदृष्टिसे देखेंगे और किसीके साथ द्वेष न रखेंगे। सब इन्द्रियोंको और इन्द्रियजन्य कामक्रोधादिको वशमें रखेंगे। वह ही परमात्माकी दयासे सांसारिक युद्धको जीतकर अर्थात सांसारिक वासनाको छोडकर परमात्मभक्तिकी सहायतासे मुक्तिधामको प्राप्त होंगे।

तेषामेवाऽनुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

भग. १०।११

अर्थ – (आत्मभावस्थः अहं) अपने भक्तोंकी अन्तःकरणकी वृत्त्यनुसार प्रत्यगात्मवृत्तिमें स्थित हुआ हुआ मैं परमात्मा (तेषा) प्रीतिपूर्वक पराभक्तिसे भजन करनेवाले उन भक्तजनों-पर (अनुकम्पार्थम्) दया दृष्टि करनेके लिये (अज्ञानं तमः) असत्में सद्भावना, अनात्ममें आत्मभावनादि अज्ञानसे उत्पन्न हुए हुए (तमः) आवरणको (भास्वता ज्ञानदीपेन) प्रकाश-मान ज्ञानरूपी दीपकसे (नाशयामि) दूर कर देता हूँ ॥ ११ ॥

वेदगीता (मंत्र)

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं
नेयथ तं ब्रवीमि । तमं एतत् पुरुष मा
प्रपत्थाभयं परस्तात् अभयं ते अर्वाक् ॥

अथ० ८।१।१०

अर्थ– हे (पुरुष) हे जीवात्मन् ! (एता पन्थां) इस अज्ञानमार्गको अर्थात् अनात्ममें आत्मबुद्धि, असत्में सद्बुद्धि आदि विपरीत ज्ञान अर्थात् अज्ञानको (मा अनुगाः) मत

प्राप्त हो, क्योंकि (एष भीमः) यह कामक्रोधादिसे अन्य अज्ञान मार्ग भयानक है (येन) जिस अज्ञानमार्गसे (पूर्वे) पूर्व कल्पमें पूर्व पुरुष अर्थात् ज्ञानीजन भी (न इयम) नहीं जाते (न ब्रवीमि) मैं परमात्मा उस अज्ञानमार्गको कहता हूँ (मा ऽपत्थ) उस अज्ञानमार्गपर मत प्राप्त हो। हे जीवात्मन् ! यदि तू इस अज्ञान मार्गपर चलेगा तो तुझे (परस्तात् भय) दूरसे भी भय होगा (अर्वाक् तेऽभयम्) और इधर सामनेसे अभय है अर्थात् अज्ञान मार्गका सहारा लनेसे परलोकमें नरकादिका भय होगा, परन्तु जीतेजी इस लोकमें तू अज्ञानसे दुःखको सुख मानेगा ॥ १० ॥

वेदगीतामें कहा है–हे जीवात्मन् तू अज्ञानी मत बन, अज्ञान पाशसे बधा हुआ कुमार्गपर मत चल। इस कुमार्गगतिका परिणाम बुरा होता है, इसमें जो जाते हैं वे दुर्गति पाते हैं, अतः सत्यमार्गका आश्रय कर, तब तू निर्भय होगा। भय तो उस असत्यके मार्गपर ही है उस पतनके मार्गमें जानेका मोह तुझे उत्पन्न न हो।

अर्जुन उवाच—

परंब्रह्म परधाम पवित्र परम भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमज विभुम् ॥ १२ ॥
आहुस्त्वामृषय सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यास स्वय चैव ब्रवीषि मे ॥

भग १०।१२।१३

अर्थ– अर्जुनने कहा। हे श्रीकृष्ण आप परब्रह्म हैं, प्रकृतिसे परे है, परमपवित्र हैं, नित्य, दिव्य, आदिदेव, अजन्मा, विभु और पुराण पुरुष है। सार ऋषि और देवर्षि नारद और असित, देवल, व्यास तुझे परब्रह्म प्रकृतिसे परे कहते हैं तथा तूने स्वय भी " भोक्तार यज्ञतपसा, सर्वभूतस्थित यो माम् इत्यादि उक्तियों द्वारा अपने आपको शाश्वत, परिपूर्ण परब्रह्म कहा है।

वेदगीता (मंत्र)

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुर-
न्वायमिच्छन्। अपृच्छमन्याँ उत ते म
आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥

ऋ० ५।३०।२

अर्थ– (अस्य) इस परमात्माके (सस्वः) अन्तर्हित परम गुह्य (उग्र) सर्वोत्कृष्ट (पदम्) स्थान, स्वरूप, परमधामको (अवाचचक्षम्) निश्चयसे मैंने (मुमुक्षु) देख लिया अर्थात् जान लिया। तथा (इच्छन्) परब्रह्मके स्वरूपको जाननेकी इच्छा करता हुआ मैं (निधातु) अपनी महिमासे जगत्के स्थापन करनेवाले परब्रह्मके पदको अर्थात् वास्तविक स्वरूपको (अन्वयम्) प्राप्त हो गया अर्थात् जान लिया। तथा (अन्यान्) भिन्न भिन्नतया, ऋषियोंसे नारद व्यासादि, मुनियोंसे भी (अपृच्छम्) परमात्माके स्वरूपको पूछा (ते) मुझसे पूछे हुए उन नारदादि ऋषियोंने (मे) मुझे (इन्द्र आहु) इन्द्र अर्थात् सर्वैश्वर्यसम्पन्न परब्रह्म परमात्माको सर्वोत्कृष्ट कहा (नर) ज्ञानियोंके नेता (बुबुधाना) परमात्माके स्वरूपको जाननेकी इच्छा करते हुए हम मुमुक्षुजन भी (अशेम) परमात्माके स्वरूपमें प्रवेश कर अर्थात् हम भी परमात्माके स्वरूपको जानें ॥ २ ॥

तुलना– गीतामें भी अर्जुनने परमात्मस्वरूपको जाननेकी इच्छा की और श्रीकृष्णसे कहा– नारद-व्यासादि तथा असित देवलादि आपको परब्रह्मका स्वरूप बताते हैं और आपने स्वय भी मुझे " भोक्तार यज्ञतपसा " इत्यादि वाक्योंद्वारा अपने आपको परब्रह्म बताया है।

वेदमें भी कहा है भक्तजनोंने परमात्माके स्वरूपको जाननेकी इच्छा की। वेदमन्त्रोंद्वारा तथा भिन्न भिन्न ऋषियोंद्वारा सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्माको सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म कहा है।

सर्वमेतदृत मन्ये यन्मा वदसि केशव।
नहि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवा ॥ १४ ॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्व पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ भग १४।१५

अर्थ– (केशव) हे केशव ! " बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन " तथा " मत्तः परतर नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय " तथा " न मे विदुः सुरगणा " तथा " महर्षय सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा " इत्यादि जो वचन आपने कहे हैं। इन सारी बातोंको मैं सत्य मानता हूँ। (भगवन्) हे परमैश्वर्यवान् परमात्मन् ! (देवा) ज्ञानिनः = इन्द्रादि देवता वा (दानवा) किं कर्तव्यविमूढ जन (ते) तेरे (व्यक्ति) –सारा जगत् इससे प्रकट होता है अथवा सारे जगत्का उपादान-कारण यही है– अचिन्त्य, ऐश्वर्य स्वरूपको नहीं जानते ॥१४॥

(भूतभावन) हे सारे भूतों अर्थात् पञ्चभूतोंके उत्पन्न करनेवाले, तथा हे भूतेश ! पञ्चमहाभूतोंको अपने वशमें रखनेवाले ! हे (देवदेव) अग्न्यादि देवोंको भी अपनी ज्योतिसे

प्रकाशित करनेवाले। 'यः आदित्ये तिष्ठन् आदित्यं प्रकाशयति' यद्वा हे पूज्योंके भी पूज्य! (हे जगत्पते) अपने उत्पन्न किये हुए सारे जगत्को अन्न और जलादिरूपसे पालन करनेवाले! (हे पुरुषोत्तम) हे पूर्ण पुरुष! (त्वं) तू अपने आपको (आत्मना) अपने स्वरूप (आत्मानं) अपने आपको जानता है ॥ १४-१५ ॥

वेदगीता (मंत्र)

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने।
त्वमङ्ग वित्से ॥

ऋ० १०।४।४

अर्थ- (अमूर) हे अमूढ! हे सर्वज्ञ परमात्मन्! (मूरा वय) मूर्ख अज्ञानी हम सांसारिक पदार्थोंमें मोह रखनेवाले (महित्वं) आपकी महिमाको अर्थात् आपके स्वरूपको (न चिकित्वः) नहीं जानते। हे (अग्ने!) हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मन्! (त्वं वित्से) तू आप ही अपनी महिमा अर्थात् अपने स्वरूपको जानता है। जैसे यास्कने भी कहा है "मूढ वयं स्मोऽमूढस्त्वमसि न वयं विद्मो महत्त्वमग्ने। त्वं तु वेत्थ।'

यद्वा-

वेदगीता (मंत्र)

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप। उदस्तभ्ना नाकमृ-ष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥

ऋ. ७।९९।२

अर्थ - (विष्णो!) हे सर्वव्यापक परमात्मन्! (ऋष्व) सुन्दर दर्शनीय (बृहन्तं) महान्से महान (नाक) द्युलोकको (उदस्तभ्नाः) ऊपर स्थापित किया। तथा (पृथिव्याः) भूमि संबन्धिनी (प्राचीं) पूर्वपश्चिमादि (ककुभं) दिशाओंको (दाधर्थ) धारण किया (देव) हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मन्! (ते) तुझ परमात्माकी (महिम्नः) महिमा अर्थात् महत्वके (परं अन्तं) परं-पारको (जायमानः) आजकल उत्पन्न हुआ हुआ मनुष्य (न आप) नहीं प्राप्त होता और (जातः) पूर्व उत्पन्न हुए हुए मनुष्य भी (न आप) तेरे स्वरूपके अन्तको नहीं पाते ॥ २ ॥

तुलना - गीता और वेदमें यही कहा है कि साधारण मनुष्य अथवा ऋषि और विद्वान् तेरे स्वरूपकी महिमा अर्थात् विस्तारको पूर्णतया नहीं जानते।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन् मया ॥ १७ ॥
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

अर्थ - हे भगवन्! (दिव्याः) तेजोमयी श्रेष्ठ (आत्म-विभूतयः) स्वमहत्त्व विस्तारवाली जो हैं (वक्तुं अर्हसि) तू ही उन्हें बतानेके योग्य है (त्वं) तू (याभिः विभूतिभिः) जिन विभूतियोंसे (इमान् लोकान् व्याप्य) इन लोकोंमें व्यापक होकर (तिष्ठसि) ठहरता है। हे योगिन्! ज्ञानयोग कर्मयोगादि संबंध-वाले कृष्ण (त्वा सदा चिन्तयन्) सदा तुझ परमात्माको ध्यान करता हुआ किन किन पदार्थोंमें मुझसे तू ध्यान करनेयोग्य है। हे (जनार्दन!) जन दृश्यादृश्य चराचर वर्ग सबमें व्यापक होकर रहनेवाले अतः हे सर्वव्यापिन् परमात्मन्! (आत्मनः योगं) अपनी शक्तिजन्य ऐश्वर्ययोगको तथा (विभूतिं) अपने विस्तारको विस्तारके साथ फिर कह। क्योंकि (अमृतं शृण्वतः) तुझ परमेश्वरको वाणीरूपी अमृतको कानोंद्वारा पान करते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १८ ॥

अर्जुनके इस वचनको सुनकर श्रीभगवान् कृष्णने कहा (हन्त) बड़ी प्रसन्नता है जो मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं उनमें मुख्य मुख्य विभूतियोंको तुझे बताऊंगा। हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! मेरे विस्तारका अन्त नहीं है ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

भग. १०।२०

अर्थ - (गुडाकेश) हे निद्राको वश रखनेवाले अर्जुन! (सर्व भूताशयस्थितः) ब्रह्मादि स्तंबपर्यन्त सब भूतोंके हृदयमें स्थित होनेवाला सर्व व्यापक आत्मा (अहम्) मैं हूँ। (भूताना) आकाशादि पदार्थोंका (आदिः) मूल कारण तथा (मध्यं) स्थितिका कारण (अन्त एव) और नाशका कारण (अहं) मैं ही हूँ ॥ २० ॥

वेदगीता (मंत्र)

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं१ स रक्षः ।२५
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्-
कारोऽनु संहितः ॥

अथ. १३।६।२५,२६

अर्थ – (स एव मृत्युः) वह परमात्मा ही सबकी मृत्युका कारण है (सोऽमृतं) वह परमात्मा ही अमृतरूप होकर मध्य कालमें स्थिर रखता है । परन्तु (सः) वही परमात्मा (अभ्वः) स्वयं उत्पत्तिसे रहित है, सबका आदि है, यह भाव है, (स रक्षः) वह परमात्मा ही रक्षक है (स रुद्रः) संहारक भी अर्थात् अन्तकारक भी वही परमात्मा है (वसुवनि.) वही परमात्मा सबका वासक अर्थात् वही परमात्मा सब भूतोंमें स्थित आत्म-रूप है । (वसुदेये) यज्ञादिमें देनेयोग्य पदार्थमें और (नमोवाके) नमस्करणीय ब्रह्मयज्ञमें (वषट्कारः) नमः स्वाहावषट् वौषट् आदि आकारवाला हुआ हुआ (अनुसहितः) नित्य अनुसन्धान किया जाता है अर्थात् नित्य स्मरण किया जाता है। यथा वा—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ।" तैत्तिरीय, भृगुवल्ली ३।१

तुलना – गीतामें ईश्वर सर्व भूताशयस्थ अर्थात् सर्वव्यापक, सारे जगत्का आदि कारण, जगत्का स्थापक और नाशक परमात्मा ही है ऐसा कहा । वेदमें भी परमात्मा ही अमृत अर्थात् पालक, उत्पादक, नाशक तथा सब यज्ञयागादिमें वषट्कारादि रूपसे स्थित है, ऐसा कहा है ।

आदित्यानामहं विष्णुः । भग. १०।२१

अर्थ – द्वादशादित्योंमें विष्णु रूप हूँ ।

वेदगीता (मंत्र)

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति ॥

ऋ. १०।८५।१

सोमेनादित्या बलिनः ॥

ऋ० १०।८५।२

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे
सुयुजः स्वाहा ॥

अथ. ५।२६।७

अर्थ – (आदित्य) परमात्माके संबन्ध यद्वा सत्यके संबंधसे यद्वा यज्ञके संबंधसे ठहरते हैं । आदित्य अर्थात् द्वादशादित्य (सोमेन) चंद्रमाके साथवाली होते हैं (सुयुजः) हे योगाभ्यासके करनेवाले मुमुक्षु पुरुषो (अस्मिन् यज्ञे) इस विभूतिसमूह यज्ञमें (विष्णुः) विष्णु रूप आदित्य (तपांसि) तपानेवाले प्रकाशक (बहुधा) बहुत प्रकारसे (युनक्तु) तुम मुमुक्षुमें संबंधित हो जावे तथा (स्वाहा) उस विष्णुका सम्यक्तया आह्वान हो तथा—

आदित्यो वै विष्णुः इति ब्राह्मणम् ।

जैसे हरिवंशमें भी कहा है ।

मरीचात्कश्यपाज्जातास्त आदित्या दक्षकन्यया ।
तत्र शक्रश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ।
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशोभगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ।

हरि पर्व. १ अध्या. ३ श्लो ५९

तुलना– भगवद्गीता और वेदमें द्वादशादित्योंमें विष्णु नामक आदित्यको विशेष विभूति बताया है ।

ज्योतिषां रविरंशुमान् । भग. १०।२१

वेदगीता (मंत्र)

अहं सूर्यश्चाहं ।

ऋ. ४।२६।१ यद्वा–

अहं सूर्य इवाजनि ।

अथ. २०।११५।१ यद्वा–

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्योऽ-
सृजन्मधुना सं मधूनि ।

ऋ. मं. १०।५४।६

अर्थ– (अहं) मैं परमात्मा (सूर्यः) रवि हू ॥ १ ॥ (अहं) मैं परमात्मा (सूर्य इव)– इव शब्द एवार्थे– सूर्य ही (अजनि) विभूतिरूपसे प्रकट हुआ हूँ ॥ २ ॥

(यः) जो परमात्मा (ज्योतिषि) ज्योतिकारक अग्न्यादि पदार्थोंमें (ज्योतिः अदधात्) प्रकाश धारण करता है । जो रविमें ज्योति है वह परमात्मा स्वरूप है (यः) जो परमात्मा (मधुना) अपने अपने कार्य– सम्पादनके लिये सेवन किये हुए

सूर्य अथात् रविके साथ (मधूनि समसृत्) जलको रचना है॥६॥

तुलना- गीता और वेद रविको परमात्म विभूति बताते हैं।

मरीचिर्मरुतामास्मि नक्षत्राणामहं शशी।

भग. १०।२१

अर्थ- मरुद्गणोंमें मरीचि, मेरी विभूति है और नक्षत्रोंमें (शशी) चंद्रमा मेरी विभूति है।

वेदगीता (मंत्र)

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्।
अस्मे वृद्धा असन्निह॥

ऋ० मं० १, सू. ३८, मं. १५

चंद्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु।

अथ० ५।२४।१० यद्वा—

चंद्रमा नक्षत्राणामीशे॥

अथ० ६।८६।२

अर्थ- हे जीवात्मन्! (मारुतं गणं) मरुतोंमें उत्तम विभूति मरीचि नामक मरुद्गणको (वन्दस्व) प्रणाम कर। (पनस्युं) स्तुतियोग्य (त्वेषं) दीप्तिमान (अर्किणम्) पूजनीय मरीचि नाम मरुद्गणको नमस्कार कर (अस्मे) हमारी (इह) नमस्कृति करनेमें (वृद्धाः असन्) सबसे श्रेष्ठ है॥१५॥

यथा-

मरुतो रश्मयः।

ताण्ड्य ब्रा० १४।१२।९ तथा च-

ये ते मारुता रश्मयस्ते।

शत. ब्रा.९।३।१।२५

तथा (चंद्रः) चंद्रमा नक्षत्रोंका अधिपति है। सब नक्षत्रोंमें चन्द्र उत्तम विभूति है। वहीं परमात्माकी विभूति चंद्रमा (माम् अवतु) मेरी रक्षा करे। चंद्रमा नक्षत्रोंका स्वामी है।

तुलना- भगवद्गीता और वेदमें मरुद्गणोंमें मरीचिको और नक्षत्रोंमें चन्द्रमाको विभूति माना है।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥

भ. १०।२२

अर्थ- वेदोंमें सामवेद मैं हूँ अर्थात् सामवेद मेरी विभूति है और देवताओंमें वासव मैं हूँ, इन्द्रियोंमें मन मैं हूँ। पञ्चभूतोंमें चेतनाशक्ति मैं हूँ॥२२॥

वेदगीता (मंत्र)

सामानि यस्य लोमानि।

अथ० ९।६।२

अर्थ- जिस विराट्रूप परमात्माके (लोमानि) बाल (सामानि) सामवेदके मंत्र गानाधार होनेसे परमात्माकी विभूतिरूप है॥६॥ तथा—

वेदगीता (मंत्र)

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः॥

अथ. का. ६, सू ८२, मं. १

अर्थ- हे मुमुक्षुजनो! (वन्वे) भगवन्नामस्मरणात्मक यज्ञमें आकर संमिलित होवो। (आयतः) सारे जगत्में तानेबानेकी तरह विस्तृत (वृत्रघ्नः) पापनाशक (शतक्रतोः) सर्जनस्थितिलयादि सैंकडों कर्मोंके करनेवाले (आगतस्य) सर्वत्र व्यापक (इन्द्रस्य) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (वासवस्य) स्थावर जगम पदार्थोंके वासकरूप वासव नामक विभूतिके (नाम) नामको (गृह्णामि) उच्चारण करते हैं॥१॥ तथा—

वेदगीता (मंत्र)

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः॥

ऋ. ३।३७।२

अर्थ- हे (शतक्रतो) सर्जनादि सैंकडों काम करनेवाले (इन्द्र!) सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (वाघतः) नामरूपी यज्ञके भारको उठानेवाले सोला जन (ते सुमनः) तुझ परमात्माके प्रत्येकके अपने अपने अभीष्ट फलके देनेवाले, विभूतिरूपी मनको (अर्वाचीनं कृण्वन्तु) अपने संमुख करते हैं। यद्वा-

वेदगीता (मंत्र)

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत॥

अथ. कां. ४, सू. १५, मं. १५

अर्थ- हे (खण्वखे) हे आत्माको ढूंढनेवाली इडानाडी! हे (खैमखे) हे पिङ्गले (तदुरि) तत् अर्थात् ब्रह्मको मध्यभागमें ध्यानवाली सुषुम्नानाडी तुम तीनों (वर्षं) आनन्दरसके

बरसानेवाले प्रवाहको (वसुध्वं) सेवन करो (पितरः) अपने अपने विषयकी पालना करनेवाली वागादि इन्द्रियों ! वाक् च मनश्च पितरो युवानः। शत. ब्रा. ६।३।३२ (मरुतां) अन्दर वास करनेवाले प्राणोंके मध्यमें (मन इच्छत) इन्द्रियोंमें परमात्माकी विभूतिरूप मनको पालो ॥ १५॥

वेदगीता (मंत्र)

चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् । राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥

ऋ० ४।२।११

अर्थ- (विद्वान्) ज्ञानी जन अर्थात् पापपुण्य और उनके फलको जाननेवाला (चित्ति) चेतना शक्तिको (अचित्ति) चेतनारहित अर्थात् जड शक्तिको (विचिनवद्) पृथक् पृथक् चुन सकता है यह प्राकृतिक शक्ति है, यह चेतनाशक्ति है इस बातको भली प्रकार पहचान सकता है। (पृष्ठेव वीता वृजिना च) जैसे अश्व पाल घोडोंकी अच्छी और बुरी पीठको जानकर हेयोपादताको पृथक् पृथक् कर लेता है वैसे (मर्तान्) मरण धर्मवाले भूतोंको और चेतनाको ज्ञानी पृथक् जान लेता है। हे देव परमात्मन् वैसे (स्वपत्याय राये) न नाश होनेवाले ज्ञानके लिये (नः) हम मुमुक्षुजनोंको बुद्धि दे । तथा (दितिं) ज्ञान देनेवाली अपनी विभूतिरूप चेतनाको (रास्व) दे दे । तथा (अदितिं) कृपणतासे (अरुष्य) रक्षा कर । तथा-

चिदसि मनासि । यजुः ४।१९

तुलना- गीतामें " वेदोंमें सामवेद और देवताओंमें वासव तथा इन्द्रियोंमें मनको तथा भूतोंमें चेतनाशक्तिको परमात्माकी विभूति " कहा है ।

वेदमें भी सामवेदको विराट्के लोम है अतः सामवेद विभूति माना है और इन्द्रको वासव, तथा ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करनेके साधन मन इन्द्रियोंमें मनको विभूति कहा है और पञ्चमहाभूत संघर्षमें चेतना अर्थात् जीवात्माको विभूति कहा है ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

भ. गी. १०।२३

अर्थ- एकादश रुद्रोंमें शंकर (कल्याणकारी) रुद्र मैं हूँ । यक्ष और राक्षसोंमें कुबेर मैं हूँ । वसुओंमें पावक (अग्नि) मैं हूँ और पर्वतोंमें मेरु मैं हूँ ॥ २३ ॥

वेदगीता (मंत्र)

नमः शंकराय च ।

यजु० १६।४१

रुद्राणामाधिपत्यम् ।

यजु। १४।२५

अर्थ- रुद्रोंका आधिपति शंकर रुद्र है। (शंकराय) कल्याणकारी शंकर नामक रुद्रको प्रणाम हो ।

वेदगीता (मंत्र)

तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ।

अथ० ८।१०।१० यद्वा—

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् ।

ऋ० १०।४५।५

अर्थ- (तस्याः) उस यक्ष राक्षसोंकी सृष्टिमें (वैश्रवणः कुबेरः) विश्रवाका पुत्र कुबेर (वत्सः) भगवत्प्रिय विभूतिरूप (आसीत्) है । आमपात्र-कचा पका हुआ ज्ञान (पात्रम्) पात्ररूप है । कुबेर धनियोंमें उदार, धनको धारण करनेवाला मेरी विभूति है ।

शुचिः पावकः ईड्यः ।

अथ. का. २, सू. ३, मं. २६ यद्वा—

वसूनां भागोऽसि ।

यजु. १४।२५ यद्वा—

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेषु अग्निरमृतो निधायि ।

ऋ० १०।४५।७

अर्थ- वह परमेश्वर वसुओंमें पावकरूप विभूति (शुचिः) शुद्ध और स्तुत्य है ॥ २६ ॥ यद्वा (वसूनां) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चंद्रमा, नक्षत्र इन आठ वस्तुओंमेंसे (भागः) भजनीय पावकरूप अग्नि तू है ।।२४।। तथा मनुष्योंमें प्रकाशमान, गतिशील, सुन्दर मेधावाला, पावक अग्नि अमृतरूप धारण किये हुए है ।

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

		मूल्य	डा.व्य
१	ऋग्वेद संहिता	१०)	२)
२	यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	३)	॥)
३	यजुर्वेद काण्व सहिता	४)	॥।)
४	यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	६)	१।)
५	यजुर्वेद काठक संहिता	६)	१।)
६	यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्रम्	१॥)	॥)
७	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)	॥)
८	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)	॥)
९	अथर्ववेद	} समाप्त होनेसे छप रहे हैं।	
१०	सामवेद		

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए उन्नीस ऋषियोंका दर्शन।)

१ से १८ ऋषीयोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(अलग ऋषिका दर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	।)
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	।)
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	।)
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	।)
५ कण्व	,,	,,	२)	।)
६ सव्य	,,	,,	१)	।)
७ नोधा	,,	,,	१)	।)
८ पराशर	,,	,,	१)	।)
९ गोतम	,,	,,	२)	=)
१० कुत्स	,,	,,	२)	।=)
११ त्रित	,,	,,	१॥)	।-)
१२ संवनन	,,	,,	॥)	=)
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	॥)	=)
१४ नारायण	,,	,,	१)	।)
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	।)
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	।-)
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	॥)	।-)
१८ सप्त	,,	,,	॥)	=)
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१॥)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से १८ काण्ड तीन जिल्दोंमें)

१ से ५ काण्ड	८)	२)
६ से १० काण्ड	८)	२)
११ से १८ काण्ड	१०)	१।)

देवता-परिचय ग्रन्थमाला

१	ऋग्वेदमें रुद्रदेवता	॥=)	=)
२	वैदिक अग्नि-विद्या	२)	।)
३	वैदिक चिकित्सा	१॥)	।)

दैवत-संहिता

भाग १	} समाप्त हो गये हैं।	
भाग २		
भाग ३	६)	१)
अग्नि देवता	४)	१)
अग्नि-इंद्र-सोम	५)	१)

सामवेद कौथुम शाखीय

ग्रामगेय (वेय, प्रकृति) गानात्मक

प्रथमः तथा द्वितीयो भाग	६)	१)

श्रीमद्भगवद्गीता

१ पुरुषार्थबोधिनि टीका (एक जिल्दमें)

मूल्य १२॥ रु. डा.व्य. २॥)

२ ,, (तीन जिल्दोंमें)	अध्याय १ से ५	५)	१।)
,,	अध्याय ६ से १०	५)	१।)
,,	अध्याय ११ से १८	५)	१।)

३ श्रीमद्भगवद्गीता लेखमाला

भाग १-२-७	३॥।)	१।)

(भाग- ३-४-५-६ समाप्त हो गये हैं।)

४ भगवद्गीता श्लोकार्ध सूची	॥)	≈)
५ गीताका राजकीय तत्वालोचन	२)	।=)
६ श्रीमद्भगवद्गीता (केवल श्लोक व अर्थ)	१)	≈)

७ श्रीमद्भगवद्गीता (प्रथम भाग)

लेखक श्री. गणेशानंदजी	१)	।)

मन्त्री- स्वाध्यायमण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी, जि. सूरत